भारत में आर्थिक नियोजन

(ECONOMIC PLANNING IN INDIA)

"आर्थिक नियोजन की गत दशाब्दि
में हमने जितनी प्रगति की है, वह
सम्भवतः नियोजन के पूर्व ५०
वर्षों में भी नहीं की थी और
अधिक तेज गति से आर्थिक
विकास के लिये हमको
इससे प्रेरणा लेनी
चाहिये ।"

—डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन
(राष्ट्रपति)

२६.

आर्थिक नियोजन के दस वर्ष

(Ten Years of Economic Planning)

२६ जनवरी सन् १९५० को भारतीय संविधान लागू होने के बाद ही भारत सरकार ने योजना आयोग की स्थापना की, जिसका प्रमुख उद्देश्य भारत के आर्थिक विकास तथा लोगो के रहन-सहन के स्तर मे सुधार करने के लिये पंचवर्षीय योजनायें तैयार करना था। अभी तक दो पंचवर्षीय योजनायें क्रियान्वित हो चुकी हैं। एक की अवधि तो सन् १९५५-५६ में समाप्त हो गई और द्वितीय योजना ३१ मार्च सन् १९६१ को समाप्त हुई। इन दोनों योजनाओं ने देश के आर्थिक व सामाजिक कलेवर को बहुत काफी सीमा तक बदल दिया है। प्रथम व द्वितीय पंचवर्षीय योजनाएँ भारत के आयोजित आर्थिक एवं सामयिक विकास के प्रथम व द्वितीय चरण हैं। आर्थिक नियोजन के गत दस वर्षो मे राष्ट्रीय आय और कृषि तथा औद्योगिक उत्पादन मे सराहनीय वृद्धि हुई है और भारत के नागरिको के रहन-सहन का स्तर भी उन्नत हुआ है। इस अवधि में राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था का अपेक्षाकृत काफी तेज गति से विकास हुआ है। प्रथम पंच-वर्षीय योजना का मूलभूत उद्देश्य तेज गति से भावी आर्थिक व औद्योगिक प्रगति के हेतु एक दृढ़ नीव की स्थापना करना था। इसी उद्देश्य से नियोजन के प्रथम पाँच वर्षों में नदी घाटी विकास योजनाओं, बहु उद्देशीय योजनाओं, भूमि-सुधार, सिंचाई व शक्ति की सुविधाओं का प्रसार, सहकारी आन्दोलन का नवीनीकरण एवं पुनरुत्थान, कृषि एवं उद्योग की सहायतार्थ विशिष्ट वित्तीय संस्थाओ की स्थापना, आदि के क्षेत्र में अनेक प्रयास किए गये हैं। इसके बाद के आगामी पाँच वर्षों मे, अर्थात् द्वितीय योजनावधि मे पहिले तो चालू योजनाओं की पूर्णता को प्राथमिकता दी गई, किन्तु साथ-साथ आधारभूत एवं भारी उद्योगों के विकास पर विशेष बल दिया गया। देश के आर्थिक नव-निर्माण मे सार्वजनिक क्षेत्र को एक महत्वपूर्ण भाग दिया गया। इस अवधि की विविध योजनाओ के अन्तर्गत रोजगार की सुविधायें बढ़ाने, आय तथा सम्पत्ति की विषमताओ को घटाने एवं आर्थिक साधनो को केवल मुट्ठी भर लोगों के हाथो में जाने से रोकने पर अधिक जोर दिया गया था। निम्न विवरण से गत दस वर्षो की आर्थिक समृद्धि का आभास मिलता है :—

योजना व्यय एवं पूँजी विनियोजन—जैसा कि निम्न तालिका से स्पष्ट है, प्रथम दो योजनाओं मे १०,११० करोड़ रुपये का विनियोजन किया गया, जिसमें से सार्वजनिक क्षेत्र में ६,५६० करोड़ रुपये का विनियोजन हुआ :—

(करोड रु० में)

	प्रथम योजना (१९५१–५६)	द्वितीय योजना (१९५६–६१)	कुल (१९५१–६१)
सार्वजनिक क्षेत्र मे खर्च	१,९६०	४,६००	६,५६०
सार्वजनिक क्षेत्र मे पूँजी विनियोजन	१,५६०	३,६५०	५,२१०
निजी क्षेत्र मे पूँजी विनियोजन	१,८००	३,१००	४,९००
कुल लगी पूँजी	३,३६०	६,७५०	११,११०

राष्ट्रीय आय में वृद्धि—ऐसा अनुमान है कि इन योजनाओं के फलस्वरूप सन १९५१ और १९६१ तक के १० वर्षों मे भारत की राष्ट्रीय आय मे ४२% और प्रति व्यक्ति आय मे २०% की वृद्धि हुई है।

कृषि उत्पादन में वृद्धि—पिछली दशाब्दी मे कृषि का उत्पादन ४०% बढ गया है। निम्न तालिका से सन् १९४९–५० से आज तक की कृषि उपज की वृद्धि का अनुमान लगाया जा सकता है :—

कृषि उपज का सूचक अङ्क (१९४९-५०=१००)

मदे	१९५०–५१	१९५५–५६	१९६०–६१
सभी जिस	९६	११७	१३५
अनाज की फसलें	९१	११५	१३२
अन्य फसलें	१०६	१२०	१४२

उपरोक्त तालिका से पता लगता है कि कृषि उपज मे वृद्धि की प्रवृत्ति रही है, यद्यपि विभिन्न वर्षो मे काफी अन्तर रहा। गत दशाब्दि मे वृद्धि की कुल दर ३·५% प्रति वर्ष रही, प्रति एकड़ उत्पादन मे भी काफी उन्नति हुई। कुछ प्रमुख कृषि पदार्थो की मात्रा में उत्पादन का अनुमान निम्न तालिका से लगाया जा सकता है :—

फसलें	इकाई	१९५०–५१	१९५५–५६	१९६०–६१
(१) अनाज (गेहूँ, दाल आदि)	मिलियन टन	५२·२	६५·८	७६·०
(२) तिलहन	मिलियन टन	५·१	६·५	७·१
(३) गन्ना (गुड)	मिलियन टन	५·६	६·०	८·०
(४) कपास	मिलियन गाँठ	२·९	४·०	५·१
(५) जूट	मिलियन गाँठ	३·३	४·२	४·०

गत दशाब्दि में कृषि, सामुदायिक विकास तथा सिंचाई पर कुल मिलाकर १,५५१ करोड़ रु० व्यय किये गये । कृषि उत्पादन मे वृद्धि से सम्बन्धित प्रमुख कार्य-क्रमों मे निम्न उल्लेखनीय हैं—सिंचाई सुविधाओं का विस्तार, रासायनिक खाद की पूर्ति, खाद के स्थानीय साधनों का विकास, उन्नत बीजों का वितरण, उन्नत कृषि कला का उपयोग तथा कृषि क्षेत्र मे विस्तार । द्वितीय योजना के अन्त तक देश को लगभग आधी ग्रामीण जन-संख्या एवं ३ लाख ७० हजार गाँव सामुदायिक विकास आन्दोलन के अन्तर्गत आ गये । राष्ट्रीय विस्तार सेवा के अन्तर्गत लगभग ६०,००० ग्राम सेवको एवं विकास अधिकारियो के लिये विशिष्ट प्रशिक्षण की व्यवस्था की गई । पिछले दस वर्षों मे सहकारी आन्दोलन ने भी सराहनीय प्रगति की । दूसरी योजना के अन्त तक प्रारम्भिक कृषि समितियों की संख्या २,१०,००० थी, जो कि सन् १९५०–५१ की अपेक्षा लगभग दुगुनी है । इस अवधि में लगभग १,८७० सह-कारी विपणन समितियां एवं ४१ सहकारी चीनी कारखानों की स्थापना की गई । सहकारी कृषि के क्षेत्र में अनेक लाभदायक प्रयोगों का प्रचलन किया गया एवं इसे प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से एक राष्ट्रीय सहकारी कृषि परामर्शदाता बोर्ड की भी स्थापना की गई ।

सन् १९५०–५१ में ५१·५ मिलियन एकड़ भूमि पर सिंचाई की जाती थी; सन् १९६०–६१ मे यह संख्या बढ़कर ७० मिलियन एकड़ हो गई । दूसरी योजना में सिंचाई की सुविधा प्राप्त सभी क्षेत्रों को उन्नत बीज की पूर्ति करने के कार्यक्रम के अन्तर्गत बीज पैदा करने के लिये लगभग ४,००० फार्म खोले गये । सन् १९५०–५१ से १९६०–६१ की अवधि मे नेत्रजनी खाद का उपभोग ५५ हजार टन से बढ़कर २ लाख ३० हजार टन हो गया । इसी प्रकार फास्फेटिक खाद का उपभोग ७,००० टन से बढ़कर ७०,००० हजार टन हो गया । पशु-धन में उन्नति, मछली उद्योग, दुग्ध-पूर्ति, वन सम्पदा, भूमि के कटाव को रोकने, आदि के सम्बन्ध में अनेक रचनात्मक प्रयास किये गये ।

औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि—गत दशाब्दी में औद्योगिक प्रगति के क्षेत्र में हमे जो सफलतायें मिली हैं, वे सचमुच बहुत प्रेरणादायक है । औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि के निम्न निर्देशांक से इसका अनुमान लगाया जा सकता है—

(१९५०–५१ = १००)

वर्ग	१९५५–५६	१९६०–६१
सामान्य निर्देशांक	१३९	१९४
सूती वस्त्र	१२८	१३३
लोहा एवं इस्पात	१२२	२३८
अनेक प्रकार की मशीनरी	१९२	५०३
रासायनिक पदार्थ	१७९	२८८

प्रौद्योगिक उत्पादन के निर्देशांकों मे ७% वार्षिक की गति से वृद्धि हुई। प्रथम योजना के सफल समापन से नये उद्योगों (विशेषत: पूंजीगत एवं निर्माणी उद्योग) का विकास करना सफल हो सका। आधारभूत एवं भारी उद्योगों के विकास का काम मुख्यत: सार्वजनिक क्षेत्र को सौंपा गया। पिछले १० वर्षों में, सार्वजनिक क्षेत्र मे उद्योगों एवं खनिज के विकास पर ९७४ करोड़ रु० व्यय किया गया। राजकीय क्षेत्र में स्थापित रूरकेला, भिलाई व दुर्गापुर के इस्पात के विशाल कारखाने, जिन्होंने अपने मुख से लोहा उगलना प्रारम्भ कर दिया है, हमारी औद्योगिक सफलता के ज्वलंत प्रतीक हैं। निजी क्षेत्र में भी इस्पात के कारखानों का काफी विस्तार किया गया। अब हमारा इस्पात का उत्पादन सन् १९५०–५१ मे १.४ मिलियन टन से बढ़कर सन् १९६०–६१ में ३.५ मिलियन टन हो गया है। इसी प्रकार पिग आयरन का उत्पादन भी ३.५ लाख टन से बढ़कर ९ लाख टन हो गया है। यह सचमुच बड़े गर्व का विषय है कि अब हमारा देश विभिन्न प्रकार के मशीनरी औजार तथा जूट, सीमेंट, वस्त्र, चीनी, कागज, खनिज आदि उद्योगों मे प्रयोग की जाने वाली विशालकाय मशीनों का भी निर्माण करने लगा है। विभिन्न प्रकार का बिजली का सामान तथा वैज्ञानिक यन्त्र भी अब देश में ही बनने लगे हैं। भारी मशीनों के निर्माण के लिये रांची में और कोल माइनिंग मशीनरी के निर्माण के लिये दुर्गापुर मे दो विशाल प्लान्टों की स्थापना की गई है। भोपाल स्थित हैवी इलैक्ट्रीकल्स के कारखाने मे उत्पादन प्रारम्भ हो गया है। इस अवधि मे देश के कुछ प्रमुख उद्योगों (जैसे जूट, सूती वस्त्र एवं चीनी) में आधुनिकीकरण व स्वचालन से सम्बन्धित योजनाएं भी पूरी हो गई हैं। सूती कपड़ा, चीनी, साइकिल, मोटर साइकिल, कार, सिलाई की मशीनें, रेडियो, बिजली के पंखे, आदि के उत्पादन मे भी काफी वृद्धि हुई।

वृहद् उद्योगों के अलावा, गत शताब्दी मे, ग्राम उद्योगों, कुटीर व लघु उद्योगों का भी पर्याप्त विकास हुआ है। इस अवधि मे भारत सरकार द्वारा इन उद्योगों के विकास के लिये २१८ करोड रु० व्यय किये गये। लगभग सभी राज्यों मे लघु उद्योग सहायक संस्थाएँ बना दी गई है तथा ५३ विस्तार केन्द्र भी स्थापित किये गये। द्वितीय योजना के अंत तक हमारे देश मे लगभग ६० औद्योगिक बस्तियां स्थापित की गई; जिनमे १,००० से अधिक लघु उद्योग खोले गये हैं। राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम द्वारा इन छोटे उद्योगों को किराया-खरीद प्रणाली पर मशीनें दी जाने लगी हैं।

अन्य क्षेत्रों में प्रगति—गत दशाब्दी मे जल विद्युत व थर्मल शक्ति की अनेक योजनाएं पूरी हो गई, जिन पर, सार्वजनिक क्षेत्र मे, लगभग ७०५ करोड़ रु० व्यय किया गया। जल विद्युत शक्ति की क्षमता १.७४ मिलियन किलोवाट से बढ़कर ३.७७ मि० किलोवाट हो गई है। चार विशाल बहु-उद्देशीय योजनाओं की पूर्ति—दामोदर घाटी, भाखरा नागल, तुङ्गभद्रा तथा हीराकुण्ड—इस क्षेत्र में हमारी सफलता के प्रतीक हैं। पिछले १० वर्षों मे यातायात के क्षेत्र मे भी अनेक विकास हुए। इस मद पर राजकीय क्षेत्र मे कुल १,८२३ करोड़ रु० व्यय किया गया। पहली पंचवर्षीय

योजना मे मुख्य उद्देश्य यह था कि युद्ध और विभाजन के कारण रेलो के विकास को जो क्षति हुई है, उसे पूरा किया जाय। दूसरी योजना अवधि मे विभिन्न यातायात सेवाओ का विकास व विस्तार किया गया। रेल-इंजनो की संख्या, जो दूसरी योजना के प्रारम्भ में ६,२०० थी, योजना के अन्त में बढ़कर १०,६०० हो गई। रेल-डिब्बो की संख्या २३,००० से बढ़कर २८,२०० और माल-डिब्बो की संख्या ३,६८,५०० से बढ़कर ३,४१,००० हो गई। प्रथम योजना के प्रारम्भ में ९७,५०० मील लम्बी सड़कें थी, जो सन् १९६०-६१ तक १,४४,००० मील तक बढ़ गईं इसी प्रकार जहाजों का टन भार ३,९०,००० जी० आर० टी० से बढ़कर ९,००,००० जी० आर० टी० हो गया।

योजना के इन दस वर्षों मे शिक्षा, स्वास्थ्य और समाज कल्याण के क्षेत्र में काफी प्रगति हुई है। प्राथमिक स्कूलो की संख्या २,१०,००० से बढ़कर ३,४२,००० हायर सेकेन्ड्री स्कूलों की संख्या ७,३०० से बढ़कर १७,००० हो गई। इसी प्रकार विश्वविद्यालयों व कालिजो की संख्या क्रमश. २७ व ५४२ से बढ़कर ४६ व १,९५० हो गई। तात्विक प्रशिक्षण के विकास पर विशेष बल दिया। वैज्ञानिक व टैक्नोलोजीकल अनुसंधान को प्राथमिकता दी गई तथा इस हेतु २० राष्ट्रीय अनुसन्धान-शालाओ व क्षेत्रीय अनुसन्धान केन्द्रों की स्थापना की गई है। स्वास्थ्य सेवाओं मे भी काफी विस्तार हुआ है। सन् १९५०-५१ मे देश में ८,६०० अस्पताल थे जिनमे १,१३,००० पलंग थे, सन् १९६०-६१ मे यह संख्या बढ़कर क्रमशः १२,६०० व १,८५,६०० हो गई। इनके अतिरिक्त २,८०० प्राथमिक स्वास्थ्य-केन्द्र खोले गये। मेडीकल कॉलेजो की संख्या भी ३० से बढ़कर ५७ हो गई। सन् १९६०-६१ मे परिवार नियोजन सेवा में ५४९ केन्द्र नगरीय क्षेत्रों में तथा १,१०० केन्द्र ग्रामीण क्षेत्रों मे संलग्न थे। गन्दी वस्तुओं की सफाई व पिछड़ी जातियों के विकास के लिये भी रचनात्मक प्रयास किये गये।

उपसंहार—इतनी प्रगति होने हुए भी आज अनेक ऐसी समस्याएँ है, जिन पर हम अभी तक विजय प्राप्त नही कर सके हैं। हमारी कुछ प्रमुख असफलताएँ निम्न-लिखित हैं:-- (१) बेरोजगारी एवं भुखमरी की समस्या अभी भी समारे सामने है; (२) बढ़ने हुए मूल्य-स्तर पर नियन्त्रण लगाने मे हम असमर्थ रहे हे; (३) जनता का सहयोग प्राप्त करने मे सरकार पूर्णतः सफल नही हुई है; (४) सामुदायिक विकास योजनाओ मे मूल भावना जागृत नही है; (५) प्रतिकूल व्यापारिक संतुलन के कारण विदेशी मुद्रा की कठिनाई बढ़ गई है। अतएव यह नितान्त आवश्यक है कि तृतीय योजना मे हम इन बाधाओ को दूर करने की चेष्टा करें; तभी हमारा देश आर्थिक उन्नति करके समाजवादी समाज के निर्माण का लक्ष्य प्राप्त कर सकेगा।

STANDARD QUESTION

1. Write an essay on "Ten Years of Economic Planning."

३०.

तृतीय पंचवर्षीय योजना
(Third Five Year Plan)

गत दस वर्षों में प्रथम व द्वितीय पंचवर्षीय योजनाओं के द्वारा देश प्राकृतिक साधनों और जनता की शक्ति को राष्ट्र के विकास कार्यों में लगाने का प्रयत्न किया गया है। प्रारम्भ में ही इस बात का ध्यान रखा गया है कि योजना का उद्देश्य केवल पैदावार का बढ़ाना और देश की दशा सुधारना ही नहीं है वरन् स्वतन्त्र व लोकतन्त्र पर आधारित ऐसी सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था की रचना करना है, जिसमें सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक न्याय राष्ट्रीय जीवन की सभी संस्थाओं को अनुप्राणित करे। देश को द्वितीय महायुद्ध और विभाजन से जो क्षति हुई थी उसे पूरा करने का प्रयास प्रथम योजना अवधि में किया गया। सामुदायिक विकास योजना का आरम्भ और भूमि सुधार इस योजना की उल्लेखनीय बातें हैं। द्वितीय योजना में पहली योजना की ही नीतियों को जारी रखते हुए पैदावार बढ़ाने, विकास में अधिक रुपया लगाने और लोगों को अधिक रोजगार देने का प्रयास किया गया है। प्रथम योजना में राष्ट्रीय आय में प्रति वर्ष ३½% और द्वितीय योजना में प्रति वर्ष ४% की वृद्धि हुई।

तृतीय योजना के उद्देश्य—देश के आर्थिक विकास में तीसरी योजना का महत्वपूर्ण स्थान है। इसके मुख्य उद्देश्य ये हैं :—

(१) अगले ५ साल में राष्ट्रीय आय में वार्षिक ५ प्रतिशत से अधिक की वृद्धि करना और इस हिसाब से देश के विकास में रुपया लगवाना, जिससे आगे भी वृद्धि का यही क्रम जारी रहे।

(२) अनाज की पैदावार में आत्म-निर्भरता प्राप्त करना और कच्चे माल की उपज को इतना बढ़ाना कि उससे हमारे उद्योगों की जरूरतें भी पूरी हों और निर्यात भी हो।

(३) इस्पात, बिजली, तेल, ईंधन आदि बुनियादी उद्योगों को बढ़ाना और

मशीन बनाने के कारखाने कायम करना, जिससे १० वर्ष के अन्दर अपने देश के औद्योगिक विकास के लिए आवश्यक मशीनें देश मे ही बनाई जा सकें।

(४) देश की जन या श्रमशक्ति का पूरा उपयोग करना और लोगों को रोजगार के अधिक जरिये देना। तथा

(५) धन और आय की विषमता को घटाना और सम्पत्ति का अधिक न्यायोचित वितरण करना, जिससे कि समाज का ढांचा समाजवादी ढङ्ग का हो सके, जिससे सब लोगों को उन्नति करने का पूर्ण अवसर मिले।

तृतीय योजना का एक मुख्य उद्देश्य यह भी है कि देश मे विकास का ऐसा क्रम चालू हो जाय जो अपने आप चलता रहे। ऐसे **स्वयं स्फूर्त विकास** का अर्थ यह है कि देश के लोग इतना धन बचाते व लगाते रहें जिससे राष्ट्र की सम्पत्ति निरन्तर बढ़ती जाय।

भौतिक लक्ष्य—उपरोक्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि आगामी पाँच वर्षों में देश की अर्थ-व्यवस्था के प्रत्येक क्षेत्र में कुछ नियत न्यूनतम विकास अवश्य हो जाना चाहिए। तृतीय योजना के भौतिक लक्ष्यों का निर्धारण इस न्यूनतम आवश्यकता को ध्यान मे रखकर ही किया गया है। ऐसा अनुमान है कि अगले पांच वर्षो मे कुल राष्ट्रीय आय ३०% और प्रति व्यक्ति आय लगभग १७% बढ़ जायेगी। नीचे दी हुई तालिका से आगामी पांच वर्षों में होने वाली प्रगति का एक आभास मिल जाता है :—

प्रमुख लक्ष्य

मद	इकाई	१९६०–६१	१९६५–६६	वृद्धि की प्रतिशत
(१) कृषि उत्पादन का सूचनाक	१९४९–५०=१००	१३५	१७६	३०
(२) खाद्यानों का उत्पादन	मिलियन	७६	१००	३२
(३) औद्योगिक उत्पादन का सूचनाक	१९५०–५१=१००	१९४	३२९	७०
(४) उत्पादन				
इस्पात के ढोके	मिलियन टन	३·५	९·२	१६३
मशीन के पुर्जे	करोड रुपयों मे	५·५	३०·०	२४५
कपड़ा	मिलियन गज	७,४७६	९,३००	२४
(५) शक्ति (क्षमता)	मिलियन किलोवाट	५·७	१२·७	१२३
(६) निर्यात	करोड़ रुपये	६४५	८५०	३२
(७) शिपिङ्ग टनेज	लाख G. R. T.	९·०	१०·९	२१

निम्नलिखित विवरण से भारतीय अर्थ-व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में होने वाले कार्यक्रमों का अनुमान लगाया जा सकता है :—

तृतीय योजना में कृषि—तृतीय योजना में कृषि के विकास को प्राथमिकता दी गई है। अनाज में आत्म-निर्भरता और उद्योगों तथा निर्यात के लिए कच्चे माल की पैदावार बढ़ाना तृतीय योजना का मुख्य उद्देश्य है। तृतीय योजना के अन्तर्गत कृषि सिंचाई तथा सामुदायिक विकास पर कुल मिला कर १,७१८ करोड़ रुपया व्यय किया जायेगा। द्वितीय योजना में यह राशि केवल ६५० करोड़ रु० थी। इस व्यय से, ऐसी आशा है कि कृषि उत्पादन में विकास की गति लगभग दुगुनी हो जायगी। खाद्यान्नों का उत्पादन ३०% एवं अन्य फसलों का ३१% बढ़ने की आशा है। कृषि क्षेत्र का एक प्रमुख उद्देश्य ग्रामीण जन-शक्ति का पूर्णतम उपयोग करना है। यह कार्य विविध कार्यक्रमों द्वारा पूरा किया जायेगा, जैसे सिंचाई की वृहद् योजनाएँ, भूमि संरक्षण, शुष्क कृषि, स्थानीय खाद पदार्थों की वृद्धि, सहकारी कृषि आदि। अक्टूबर सन् १९६३ तक देश के सभी गाँवों में सामुदायिक विकास का कार्य चल पड़ेगा। सहकारी संगठन भी बढ़ाया जायेगा और कृषि के लिये सहकारी समितियों द्वारा अधिक ऋण दिलवाए जायेंगे।

तृतीय योजना में उद्योग-धन्धे—तृतीय पंच-वर्षीय योजना में पूँजीगत उद्योगों के विकास पर बहुत अधिक बल दिया गया है, विशेषत: ऐसे उद्योग जो उपभोक्ता उद्योगों में प्रयोग की जाने वाली विशाल मशीनों का निर्माण करें। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत सार्वजनिक क्षेत्र को अत्यन्त महत्वपूर्ण भाग दिया गया है, किन्तु साथ-साथ ऐसी भी आशा की गई है कि निजी क्षेत्र भी योजना द्वारा नियत कलेवर के अन्तर्गत अपना सक्रिय भाग अदा करेगा। उपभोक्ता पदार्थों के उत्पादन का विकास मुख्यत: निजी क्षेत्र में ही होगा। सार्वजनिक क्षेत्र के अन्तर्गत मुख्यत. निम्न उद्योगों के विकास पर अधिक ध्यान केन्द्रित किया जायगा—मैटलर्जी, औद्योगिक मशीनरी, मशीन टूल्स, रासायनिक खाद, आधारभूत रसायन, मुख्य दवाइयाँ तथा पैट्रोल शोधन। लौह एवं इस्पात उद्योग के अन्तर्गत विकास के लक्ष्यों की प्राप्ति राजकीय क्षेत्र के तीन विशाल कारखानों—रूरकेला, भिलाई व दुर्गापुर—की उत्पादन क्षमता ५·६ मिलियन तक बढ़ाकर तथा बोकारो में एक चौथा इस्पात का कारखाना स्थापित करके पूरी की जायगी। तृतीय योजना अवधि में मशीनरी तथा इंजीनियरिंग उद्योगों के विकास पर विशेष बल दिया जा रहा है। रांची में एक भारी मशीनरी का प्लान्ट स्थापित किया जा रहा है, जिसके पूर्ण होने पर यह आशा है कि देश भविष्य में विदेशों से अधिक मात्रा में भारी मशीनरी नहीं मँगायेगा। तृतीय योजना अवधि में ऑटोमोबाइल उद्योग के लक्ष्य ३०,००० कार तथा ६०,००० अन्य वाणिज्यिक वाहनों के निर्माण के हैं। तृतीय योजना में सम्मिलित अन्य औद्योगिक कार्यक्रमों में निम्न के नाम उल्लेखनीय हैं—सनातनगर में सिंथेटिक ड्रग्स का कारखाना, ऋषिकेश के निकट एन्टीबॉयोटिक प्लान्ट की स्थापना तथा केरल में फ़ीरो-

केमिकल के कारखाने की स्थापना । उपभोक्ता पदार्थों के क्षेत्रों मे निम्नलिखित वस्तुओं के उत्पादन को बढ़ाने का प्रस्ताव किया गया है—कपड़ा, कागज, चीनी, घड़ियाँ आदि ।

खनिज के क्षेत्र में भी विकास के अनेक कार्यक्रम है, जिनमे सबसे अधिक प्राथमिकता खनिज तेल के साधनो के अनुसंधान व शोषण को दी गई है ।

ग्रामीण एवं लघु उद्योग—वृहत् उद्योगों के विकास के साथ-साथ तृतीय योजनावधि में ग्रामीण एवं लघु उद्योगों का भी पर्याप्त विकास होगा, जिससे कि (i) अधिक से अधिक लोगो को रोजगार मिल सके और (ii) उपभोक्ता पदार्थों तथा कुछ पूंजीगत पदार्थों के उत्पादन में वृद्धि हो सके । ग्रामीण एवं लघु उद्योगों के विभिन्न कार्यक्रमों पर सार्वजनिक क्षेत्रो के अन्तर्गत २६४ रु० के व्यय का आयोजन किया गया है । निजी क्षेत्र मे भी लगभग १७५ करोड़ रु० के विनियोग का अनुमान है । तृतीय योजना अवधि में लगभग ३०० नई औद्योगिक बस्तियों की स्थापना की जाएगी । गाँव व नगरों दोनो मे छोटे उद्योग चलाने और उनको बड़े उद्योगों से जोड़ने का प्रयत्न किया जायेगा, जिससे वे बड़े उद्योगो के लिए छोटे पुर्जे आदि का निर्माण करें ।

अन्य क्षेत्र—निजी तथा सार्वजनिक क्षेत्रो मे विद्युत शक्ति के विकास कार्यक्रमो पर कुल १,०८९ करोड व्यय किया जायगा । यातायात एवं सन्देशवाहन के साधनो के विकास पर भी पर्याप्त बल दिया गया है । आशा है कि सन् १९६५-६६ मे रेलगाड़ियाँ २३ करोड ५० लाख टन माल ढोएँगी, जबकि सन् १९६०-६१ मे १६ करोड २० लाख टन ढो रही थी । १,२०० मील नई रेल लाइन बिछाई जाएगी । सन् १९६५-६६ मे पक्की सड़को की लम्बाई बढ़कर १,६४,००० मील हो जायगी । मोटर यातायात का विकास अधिकाशत: निजी क्षेत्र मे होगा । तृतीय योजना मे ६ वर्ष से ११ वर्ष की आयु के बच्चो के लिए अनिवार्य व नि:शुल्क शिक्षा की व्यवस्था की जायगी । विज्ञान व शिल्प की शिक्षा का विशेष रूप से विस्तार किया जायगा । अस्पतालो व दवाखानो की संख्या १२,६०० से १४,६०० और प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों की संख्या २,८०० से बढ़कर ५,००० हो जायगी । संतति-निरोध केन्द्रो की संख्या भी १,८०० से बढ़कर ८,२०० हो जायेगी । कम आय वाले लोगो और औद्योगिक कर्मचारियों के लिए मकान बनाने, गन्दी बस्तियो की सफाई और उनमें सुधार करने, मकानों के लिए जमीन लेने तथा उसका सुधार करने के कार्यक्रमो का विस्तार किया जाएगा । मकान बनाने के लिए धन आवास वित्त निगमो द्वारा दिया जायगा ।

देहाती क्षेत्रों मे कुछ न्यूनतम उपलब्ध सुविधायें प्राप्य हो, इसके लिये तीसरी योजना मे स्थानीय विकास का एक कार्यक्रम सम्मिलित किया गया है । इसके अन्तर्गत जिन सुविधाओं की व्यवस्था की गई है वे निम्न हैं :—(अ) पीने के पानी की

पूर्ति; (ब) प्रत्येक गाँव को निकटतम मुख्य सड़क या रेल्वे स्टेशन से मिलाने के लिए सड़कों का निर्माण; और (स) गाँव के स्कूल के भवन का निर्माण, जो सामुदायिक केन्द्र और पुस्तकालय का भी कार्य करेगा।

तृतीय योजना का व्यय—ऊपर जिन लक्ष्यों का उल्लेख किया गया है, उनको पूरा करने के लिए तृतीय योजना की अवधि में ११,६०० करोड़ रु० व्यय होंगे। इसमें चालू खर्च की राशि के १,२०० करोड़ भी सम्मिलित हैं। इस प्रकार तृतीय योजना में कुल विनियोजन १०,४०० करोड़ होगा, जिसमें से सार्वजनिक क्षेत्र का भाग ६,३०० करोड़ रु० और निजी क्षेत्र का भाग ४,१०० करोड़ का है। निम्न तालिका से यह स्पष्ट है कि सार्वजनिक क्षेत्र में ७,५०० करोड़ रु० किन-किन मुख्य मदों पर व्यय किया जायगा :—

सार्वजनिक क्षेत्र में खर्च का ब्यौरा

(करोड़ रु०)

विवरण	कुल विनियोग	योग का प्रतिशत
(१) खेती और सामुदायिक विकास	२,०६८	१४
(२) सिंचाई के बड़े और मध्यम काम	६०५	६
(३) बिजली	१,०१२	१३
(४) ग्रामोद्योग और छोटे उद्योग	२६४	४
(५) बड़े उद्योग और खनिज	१,५२०	२०
(६) यातायात और संचार	१,४८६	२०
(७) सामाजिक सेवा आदि	१,३००	१७
(८) कच्चा और अर्द्ध तैयार माल (Inventories)	२००	३
योग	७,५००	१००

वित्तीय साधन—सार्वजनिक क्षेत्र की योजनाओं के लिए जो वित्त व्यवस्था की गई है वह नीचे दी गई सारणी में दी जा रही है :

वित्तीय साधन

(करोड़ रु०)

मद	कुल राशि
(१) अतिरिक्त कर, जिनमे सार्वजनिक उद्यमो मे अधिक बचत करने के लिए किए जाने वाले उपाय भी सम्मिलित हैं।	१,७१०
(२) वर्तमान राजस्व से बची हुई राशि (अतिरिक्त करों को छोड़कर)	५५०
(३) रेलो से प्राप्ति	१००
(४) अन्य सार्वजनिक उद्योगो से बचत	४५०
(५) जनता से ऋण (शुद्ध)	८००
(६) छोटी बचतें व प्रॉविडेन्ट फण्ड (शुद्ध)	८६५
(७) विविध पूंजीगत प्राप्तियाँ	२७५
(८) घाटे की अर्थ-व्यवस्था	५५०
(९) विदेशी सहायता के रूप मे बजट मे दिखलाई गई राशि	२,२००
कुल योग	७,५००

तृतीय योजना अवधि मे १०,४०० करोड़ रु० का जो कुल विनियोजन किया गया है, वह द्वितीय योजना मे किए गए विनियोजन की अपेक्षा ३४% अधिक है। प्रथम योजना में यह राशि ३,३६० करोड रु० और द्वितीय योजना मे ६,७५० करोड रुपया थी। उपरोक्त आँकडो के एक मात्र अवलोकन से एक बात स्पष्ट है कि समस्त वित्तीय साधनो मे अतिरिक्त करारोपण सबसे अधिक महत्वपूर्ण भाग अदा करेगा, क्योंकि इसके द्वारा १,७१० करोड़ रु० की प्राप्ति की आशा है। दूसरा महत्वपूर्ण वित्तीय साधन है विदेशी सहायता। विश्व के अविकसित भागो के विकास के लिए मिल-जुल कर सहायता देने की दशा मे यह एक साहसपूर्ण पग है। मित्र देशो की इस सद्भावनापूर्ण प्रवृत्ति को देखते हुए, हमें भी अपने आन्तरिक साधन जुटाने के लिए अत्यधिक प्रयास करने की आवश्यकता है। साथ ही इस बात पर भी ध्यान देना चाहिये कि उपलब्ध सहायता का अर्थ-व्यवस्था के सर्वाधिक हित मे उपयोग किया जाये। जहाँ तक आन्तरिक व विदेशी साधनों का प्रश्न है, हमे उत्पादन और बचत मे निरन्तर वृद्धि करनी होगी; योजना की सफलता के लिए यह अत्यधिक आवश्यक है। तृतीय योजना मे वित्तीय साधनो का एक महत्वपूर्ण लक्षण घाटे की

अर्थ-व्यवस्था पर अपेक्षाकृत कम निर्भरता है। घाटे के राजस्वन से प्राप्त राशि केवल ५५० करोड़ है, जबकि द्वितीय योजना में यह राशि १,२०० करोड़ थी। यह कमी वास्तव में अनिवार्य थी।

आलोचनात्मक मूल्यांकन—यद्यपि देश के विभिन्न भागों में तृतीय योजना का सहृदयता के साथ स्वागत किया गया है, किन्तु फिर भी देश में कुछ ऐसे लोग भी हैं जो इसको 'जन योजना' नहीं वरन् 'नेहरू की योजना' कहते हैं। इन लोगों के मतानुसार हमारी तृतीय योजना अधिक महत्वाकांक्षी है तथा दूरदर्शिता से परे है। इसमें देश की प्रमुख समस्या गरीबी व बेरोजगारी का निवारण नहीं होता। इकानॉमिक टाइम्स के अनुसार "योजना में ऐसी कोई चीज नहीं है जिससे कि राष्ट्र परिचित न हों, इसमें जन समाज के लिए समृद्धि व खुशहाली का कोई संदेश नहीं है।" कुछ लोगों ने तो यहाँ तक आलोचना की है कि "तृतीय योजना देशवासियों के रहन-सहन के स्तर को वृद्धि के लिये नहीं बनाई गई है, वरन यह तो एक प्रकार का 'इलेक्शन मैनिफैस्टो' है।" योजना के अन्तर्गत अतिरिक्त करारोपण से गरीब जनता और भी दब जाएगी। इसी प्रकार विदेशी सहायता के न मिलने पर हमारे अनेक कार्य-क्रम भी खटाई में पड़ सकते हैं। घाटे का राजस्वन भी दूरदर्शिता की दृष्टि से उचित नहीं कहा जा सकता है। इस प्रकार की आलोचनाएं करने वाले लोगों में प्रमुख हैं देश के वयोवृद्ध राजनीतिज्ञ श्री राजगोपालाचार्य, प्रो० एन० जी० रङ्गा, आचार्य कृपलानी, अशोक मेहता, अटल बिहारी वाजपेयी, आदि।

उपरोक्त तथ्यों में भले ही कुछ सत्यता हो, किन्तु इस सम्बन्ध में दो मत नहीं हो सकते कि तृतीय योजना पूर्णतया जनतन्त्र एवं समाजवाद के सिद्धान्तों पर आधारित है। यह वास्तव में नेहरू अथवा कांग्रेस पार्टी की नहीं वरन् ४४ करोड़ लोगों की योजना है, जो 'भारत' में निवास करते हैं। देश की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को देखते हुए तृतीय पंच-वर्षीय योजना को कोई भी विवेकशील व्यक्ति 'अधिक महत्वाकांक्षी' नहीं कह सकता। स्वयं स्फूर्ति विकास, जो तृतीय योजना का एक मुख्य उद्देश्य है, तभी हो सकता है, जब कृषि और उद्योग दोनों की समुचित उन्नति हो। यही कारण है कि तृतीय योजना में कृषि व उद्योगों के विकास को प्राथमिकता दी गई है। तृतीय योजना की समाप्ति पर औद्योगिक उत्पादन का सामान्य सूचनांक, जो प्रगति का परम्परागत सूचक रहा है, ३२६ तक पहुँच जायेगा (आधार वर्ष १९५०-५१ =१००), जबकि द्वितीय योजना की समाप्ति पर वह १९४ और प्रथम योजना की समाप्ति पर १३९ था। विकास कार्यों की अपेक्षित गति को देखते हुए योजना के अन्तर्गत लगाए हुए करों के भार को असहनीय नहीं कहा जा सकता। अप्रत्यक्ष करों और वस्तुओं के मूल्य में वृद्धि होने से निश्चय ही लागत और मूल्य दोनों बढ़ेंगे, किन्तु यह एक ऐसा त्याग है जो करना ही पड़ेगा।

उपसंहार—घाटे की अर्थ-व्यवस्था के आधार पर जो भी योजना बनाई जाएगी, उससे मुद्रा स्फीति को बल मिलेगा, जिसके फलस्वरूप मूल्य वृद्धि होना स्वाभाविक

है। किन्तु हमारी तृतीय योजना के विशाल रूप (१०,२०० करोड़ रुपये की योजना) को देखकर किसी को भी आश्चर्य नहीं होना चाहिये। आज जनता ने यह अनुभव कर लिया है कि इतने बड़े राष्ट्र के लिए जिसकी जन-संख्या सन् १९६५ तक लगभग ४८ करोड़ हो जायगी, छोटी मोटी योजना से काम नहीं चल सकेगा। इसके अतिरिक्त चीन की आक्रामक कार्यवाहियों ने भारत की आँखें खोल दी हैं और आज हम सब इस बात का अनुभव करने लगे हैं कि भविष्य में चीन से लोहा लेने के लिए राष्ट्र का आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी होना अनिवार्य है। अन्त में यह लिखना अनावश्यक न होगा कि तृतीय योजना की सफलता के लिए बलिदान की अनावश्यकता है। बलिदान तभी होगा जब इच्छा होगी और इच्छा तभी जागृत होगी जब सहयोग की भावना होगी। अतएव जनता के इच्छापूर्वक सहयोग की प्राप्ति के लिए विशेष प्रयत्न किए जाने चाहिए।

STANDARD QUESTION

1. Write a critical note on Third Five Year Plan.

३१.

देश की भावात्मक एकता और सुनियोजित अर्थ-व्यवस्था

(Emotional Integration and Planned Economy)

गत कुछ समय से हमारे नेतागण 'भावात्मक एकता' पर अधिक बल देने लगे हैं। भावात्मक एकता का स्पष्ट आशय यह है कि हम सब लोग यह अनुभव करने लगें कि हमारा अन्तिम लक्ष्य एक ही है, और वह है सम्पूर्ण देश की उन्नति करना। इस दृष्टि से हम लोगों को मस्तिष्क की संकीर्णता से बिल्कुल दूर रहना चाहिए एवं छोटे-मोटे मतभेदों को भुलाकर सामान्य बातों के सम्बन्ध में एक मत हो जाना चाहिए।

किसी भी राष्ट्र की चहुँमुखी प्रगति के लिए भावात्मक एकता नितान्त आवश्यक है, इसे सभी लोग स्वीकार करते हैं। वे यह भी स्वीकार करते हैं कि यदि राष्ट्र आगे बढ़ता है, तो इसी से व्यक्ति की भी उन्नति होती है, उसकी मानमर्यादा बढ़ती है और उसकी आर्थिक दशा में सुधार होता है। यहाँ यह स्वाभाविक प्रश्न उठता है कि यदि ऐसा है तो फिर राष्ट्र की एकता के विरोध में घातक तत्व समय-समय पर अपना सिर क्यों उठाते हैं? कभी भाषा के प्रश्न को लेकर झगड़े होते हैं, तो कभी राज्य के हितों का प्रश्न लेकर, कभी धर्म और सम्प्रदाय की आड़ में द्वेष फैलाया जाता है तो कभी जाति-पाँति के संकुचित विचारों को उभार कर समाज में फूट फैलाई जाती है।

भावात्मक एकता क्यों कर सम्भव हो?—यदि कोई भी राष्ट्र सुनियोजित अर्थ-व्यवस्था के अन्तर्गत प्रगति करना चाहता है, तो बिना भावात्मक एकता के यह सम्भव नहीं है। 'राष्ट्र की एकता को सुदृढ़ बनाने के लिए यह बहुत जरूरी है कि देश में व्याप्त विघटनकारी शक्तियों का मूल कारण खोजा जाए और उसे जड़मूल से नष्ट करने के उपायों पर विचार किया जाए।' राष्ट्र की भावात्मक एकता को मजबूत बनाने के लिए कुछ लोग देश की वर्तमान अर्थ-व्यवस्था तथा बदलते हुए समय की माँग

का ध्यान न रखते हुए कुछ पुराने घिसे-पिटे साधनों का सुझाव देते हैं। उदाहरण के लिए उनका कहना है कि हमें अपने देश की प्राचीन परम्पराओं, मान्यताओं और धार्मिक विश्वासों के प्रति श्रद्धा जागृत करनी चाहिए, अपने पुराने ऋषि-मुनियों एवं धार्मिक ग्रन्थों की शिक्षा का प्रचार करना चाहिए। देश की प्राचीन संस्कृति और आचार संहिता का प्रसार करना चाहिए, आदि। ये समस्त सुझाव विभिन्न परिस्थितियों एवं अपने-अपने स्थान पर ठीक हो सकते हैं, किन्तु वे देश में व्याप्त उस असन्तोष के मूल कारणों का विश्लेषण नही करते जिसके कारण, एक ही धर्म, एक ही संस्कृति, एक ही परम्परा और एक ही आचार साहित्य मे विश्वास करने वाले लोग भी आपस मे लड़ते रहते हैं एवं कुछ निहित स्वार्थों की पूर्ति के लिए समाज मे हिंसा और फूट का बीज बोने वाले तत्वों को उभारते हैं।

कुछ मूलभूत समस्याएं—अब यह प्रश्न उठता है कि यह निहित स्वार्थ क्या है एवं उसका निराकरण किस प्रकार किया जा सकता है ? यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाए तो ज्ञात होगा कि हमारे धार्मिक, प्रान्तीय, भाषा सम्बन्धी और जाति-पाँति आदि से सम्बन्धित संघर्षों के पीछे हमारे आर्थिक हित छिपे हुए हैं। हमारे देश में जीवनयापन या रोजगार के साधन भी सीमित हैं। यद्यपि देश प्राकृतिक प्रसाधनों का भण्डार है, किन्तु उन साधनों का पूरा-पूरा उपयोग नही किया जाता। सार्वजनिक क्षेत्र मे अभी सेवाओं की कमी है। देश में जन-संख्या का भार निरन्तर बढता चला जा रहा है। बेरोजगारी अपना विकराल रूप धारण किए हुए बढ़ती ही जा रही है। यद्यपि देश में रूरकेला, भिलाई और दुर्गापुर जैसे विशालकाय उद्योग स्थापित हो गए हैं, परन्तु उनमे अधिक लोगों को रोजगार नही मिलता है। ऐसे वृहत उद्योगों से न तो बेरोजगारी की समस्या मिटी है और न मिटेगी। मशीनों द्वारा अधिक उत्पादन होने से गरीबों और अमीरों के बीच की खाई बढ़ती जा रही है। आज कुछ परिस्थिति ही ऐसी हो गई कि मुट्ठी भर लोग अधिक धनाढ्य बनते चले जा रहे है और दरिद्र लोग अधिक गरीब होते जा रहे हैं। एक समय था जब धर्म और भाग्य के नाम पर मालदार लोग गरीबों को सिर उठाने और अपने अधिकारों की माँग करने से रोक सकते थे। परन्तु आधुनिक लोकतन्त्र और राजनीतिक व सामाजिक चेतना के युग मे यह सम्भव नही रहा है।

हमारे प्रतिदिन के संघर्षों मे यह आर्थिक स्वार्थ ही छुपा हुआ है। रोटी और रोजगार की माँग को एक ऐसे आकर्षक नारे का रूप दे दिया जाता है जिसके सहारे समाज के एक गुट विशेष की सहानुभूति प्राप्त हो जाती है और फिर उन लोगों के विरुद्ध आन्दोलन खड़ा किया जा सकता है जिनके हाथ मे आर्थिक सत्ता विद्यमान है तथा जिनकी शक्ति को नष्ट करके जीवनयापन के साधनों पर अधिकार किया जा सकता है।

कुछ उदाहरण—नए राज्य के निर्माण के प्रश्न को ही ले लीजिए। आज समस्त भारत में जनता को एक से ही नागरिक व राजनैतिक अधिकार प्राप्त हैं,

उन्हे हर राज्य में निवास करने तथा स्वतन्त्र रूप से मनमाना व्यापार करने की सुविधा है। सामान्यत: नए राज्यों के निर्माण अथवा उनकी सीमाओं में थोड़ी घटा-बढ़ी करने से साधारण जनता के अधिकारों पर प्रभाव नहीं पड़ता। हाँ, ऐसे लोगों को रोजगार तथा सत्ता प्राप्ति के साधन अवश्य मिल जाते हैं, जो जनता की निम्न भावनाओं को उभार कर उसे अपने साथ मिला लेते है और फिर मन्त्री पद अथवा विधान मण्डल की सदस्यता प्राप्त कर अपनी महत्त्वाकाक्षा की पूर्ति कर लेते हैं। इसी प्रकार जब दक्षिणवासी देश पर उत्तरी भारत के लोगों की प्रवृत्ति की बात करते है अथवा हिन्दी को समस्त देश की राष्ट्रभाषा बनाए जाने का विरोध करते है तो इसका यह कारण नहीं है कि वे वास्तव में ऐसा सोचते हैं अथवा हिन्दी की व्यापकता और उपादेयता को स्वीकार नहीं करते, वरन् यह है कि उन्हे भय होता है कि हिन्दी को शिक्षा तथा सरकारी कामकाज की भाषा बना देने से उन लोगों को सरकारी नौक-रियों के मिलने में कठिनाई हो जाएगी, जिनकी मातृ-भाषा हिन्दी के स्थान पर तामिल, तैलगू, मलियालम, कन्नड़ या इसी प्रकार की अन्य भाषाएँ हैं। इसी प्रकार जब किसी राज्य, जिले अथवा स्थान विशेष के हितों की रक्षा की बात की जाती है, तो उस माँग के पीछे भी हमारी वही क्षुद्र भावना होती है कि देश का व्यापक हित भले ही हो या न हो, परन्तु हमारे क्षेत्र को विशेष आर्थिक सुविधाएं प्राप्त हो जाएं जिनसे हमे स्वयं रोजगार मिले तथा हमारी निजी औद्योगिक व्यापारिक प्रगति का मार्ग प्रशस्त हो। अभी पिछले दिनों जब भारत सरकार के सम्मुख यह प्रश्न आया था कि समाज के पिछड़े हुए वर्गों को राष्ट्र के उन्नतशील वर्गों के स्तर पर लाने के लिए कुछ विशेष सुविधाएँ दी जाएं और इस हेतु सन् १९५३ मे काका कालेलकर के सभापतित्व मे एक आयोग की स्थापना की गई थी, तो देश की लगभग २,५०० जातियों और सम्प्रदायों ने अपने सम्मान की चिन्ता न करते हुए आयोग से प्रार्थना की कि उन्हे पिछड़ा हुआ वर्ग मानकर विशेष सुविधाएँ प्रदान की जाएँ। सरकार ने यह देखा कि यदि इन सब लोगों की माँग स्वीकार कर ली गई, तो देश के ८०% लोग पिछड़े हुए वर्ग के लोग मान लिए जाएँगे।

कुछ सुझाव—अत: यह स्पष्ट है कि देश की एकता को बनाए रखने तथा विघटनकारी और संकुचित स्वार्थों का सामना करने के लिए जहाँ कुछ भावात्मक उपायों (जैसे शिक्षा प्रणाली मे सुधार, इतिहास का पुनर्निर्माण, सांस्कृतिक उत्थान, जनता का बौद्धिक विकास, आदि) की सहायता ली जा सकती है, वहाँ उनके मूल कारणों को नष्ट करने के लिए राष्ट्र के समस्त नागरिकों का समान आर्थिक विकास आवश्यक है। जब सरकार स्पष्टत: यह कह सकेगी कि देश की जनता की रोटी व रोजी का उत्तरदायित्व उस पर है, वह प्रत्येक व्यक्ति के लिए जीवनयापन के समुचित साधन उपलब्ध कर सकेगी और इस बात का भी प्रयत्न करेगी कि समाज मे आर्थिक असमानताएँ कम हो जाएँ, छोटे और बड़े का भेद-भाव मिट जाए, समाज से शोषण की प्रथा का अन्त हो जाए तो राष्ट्रीय एकता अपने आप स्थापित हो जाएगी। आज

इन्हीं कारणों से देश में समाजवादी समाज की स्थापना का उद्देश्य अपनाया गया है। हमारी पंच-वर्षीय व सामुदायिक विकास योजनाओं की पृष्ठभूमि में भी यही रहस्य छिपा हुआ है। यही कारण है कि हम उन्हें देश की एकता का सबसे बड़ा प्रहरी मानते हैं। हमारी योजनाओं की प्रस्तावना में स्पष्ट कहा गया है कि उनका उद्देश्य यह है कि देश का तेज गति से आर्थिक विकास हो, उत्पादन बढ़े, जिससे बेरोजगारी और दरिद्रता का अन्त हो तथा देश में आर्थिक असमानताएँ व विषमताएँ मिट जाएँ।

उपसंहार—यहाँ यह लिखना अनावश्यक न होगा कि अभी तक हमारी योजनाएँ भावात्मक एकता में वृद्धि के उद्देश्य में पूरी तरह सफल नहीं हुई हैं, वे उन क्षेत्रीय भावनाओं का सामना करने में भी असफल रही हैं जिनके अधीन देश का प्रत्येक राज्य यह चाहता है कि उसके क्षेत्र को विशेष सुविधाएँ मिलें, बड़े-बड़े कारखाने उसी के यहाँ खुलें तथा बिजली, सिंचाई व विशाल कृषि फार्मों की स्थापना उसी के यहाँ हो। परन्तु इसका आशय यही है कि हमें देश की योजनाओं को सफल बनाने के लिए प्रत्येक सम्भव उपाय काम में लाना चाहिए। सदैव इसी बात का प्रयास करना चाहिए कि राज्य-राज्य, क्षेत्र-क्षेत्र, नगर-नगर और गाँव-गाँव के आर्थिक विकास में किसी प्रकार का भेद-भाव न बरता जाए। प्रगति के लिए सभी को समान अवसर मिलने चाहिए। देश में कोई भी पिछड़ा हुआ क्षेत्र अथवा जनता का वर्ग न रहे। अल्प संख्यक जातियों व पिछड़े हुए वर्गों को समाज के अन्य लोगों के स्तर पर लाने के लिए हर प्रकार की सुविधाएँ दी जाएँ। प्रत्येक व्यक्ति को रोजगार व अपने व्यक्तित्व के विकास का पूर्ण अवसर दिया जाए। राष्ट्र की भावात्मक एकता को स्थायी रूप देने के लिए यही सबसे बड़ा उपाय है।

STANDARD QUESTION

1. Write an essay on "Emotional Integration and Planned Economy."

सप्तम पुस्तिका अध्याय ३२-३५

श्रम समस्यायें

(LABOUR PROBLEMS)

"जब कि सम्पूर्ण राज्य यह प्रयत्न कर रहा है कि जनता के साथ
उचित न्याय हो, तब राज्य यह सहन नहीं कर सकता कि
समाज के दुर्बल वर्ग के व्यक्तियों के साथ—चाहे वे
औद्योगिक श्रमिक हों, कृषि श्रमिक हों अथवा
किसी अन्य वर्ग के व्यक्ति हों—
अन्याय होता रहे।"

—श्री खंडू भाई देसाई

३२.

भारत में श्रम-संघ आन्दोलन

(Trade Union Movement in India)

भारतीय श्रम संघ आन्दोलन का इतिहास अधिक पुराना नही है। परन्तु आन्दोलन के इस संक्षिप्त इतिहास मे ही अनुभव तथा क्रान्तिकारी कार्यों के इतने अधिक उदाहरण मिलते हैं जितने अन्य देशो के अधिक पुराने तथा विकसित आन्दोलनो मे भी नही मिलते। भारतीय श्रम संघ आन्दोलन के इतिहास का अध्ययन हम निम्न चरणो (Stages) के अन्तर्गत कर सकते है—

ऐतिहासिक विवेचना

प्रथम चरण—अन्य देशों की भाँति भारत में भी श्रम संघ आन्दोलन की उत्पत्ति औद्योगिक विकास के परिणामस्वरूप ही हुई है। गत शताब्दी के मध्य में बड़े उद्योगो के विकास के साथ ही औद्योगिक संगठनो की स्थापना की ओर अधिक ध्यान दिया जाने लगा है। किन्तु आरम्भ मे सेवा योजको के ही सगठन बने, जिन्होंने श्रमिको के विरुद्ध अपने हितों की रक्षा के लिये अपने संघ बनाये। मालिको के संगठनो मे सरकार की श्रम नीति को भी प्रभावित किया। फलतः श्रम संगठनों का विकास समुचित रूप से न हो सका क्योंकि इनके विकास के लिये परिस्थितियाँ अनुकूल नही थी। श्रमिक अत्यन्त दरिद्र, दुर्बल थे, जबकि उनके मालिक अधिक शक्तिशाली थे। जनता भी श्रम संगठनों के सम्बन्ध मे उदासीन थी और सरकार की भी उनसे कोई सहानुभूति न थी।

भारत मे श्रम-संघ का प्रारम्भ उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्ध से समझना चाहिये। सन् १८५८ मे **सोहराब जी शाहपुरी** के नेतृत्व मे कुछ समाज सुधारकों ने बम्बई की वस्त्र मिलो में काम करने वाले श्रमिको, विशेषतः स्त्रियों और बच्चों की दीन दशा के विरुद्ध आन्दोलन चलाया और सरकार से इसकी दशा में सुधार करने के लिए आवश्यक सन्नियम बनाने की माँग की।

श्रमिकों मे किसी प्रकार के संगठित प्रयत्न का प्रथम संकेत १८७७ में मिला, जब नागपुर की एक प्रेस मिल के श्रमिकों ने मजदूरी की दरों के प्रश्न को लेकर

हड़ताल की। इसके बाद और भी अनेक हड़तालें हुई। सन् १८८२ और १८९० के बीच में मद्रास और बम्बई में २५ हड़तालों का विवरण पाया जाता है।

श्रमिकों की वास्तविक संगठन की प्रथम नींव सन् १८८४ में पड़ी, जब श्री एन० एम० लोखांडे ने बम्बई में श्रमिकों की एक सभा बुलाई और अपनी माँगों के अनेक प्रस्ताव पास किये जैसे साप्ताहिक अवकाश का होना, कार्य के बीच आध घन्टे का अवकाश, मासिक मजदूरी का नियमित रूप से भुगतान, दुर्घटना की दशा में क्षतिपूर्ति करना, आदि। इन माँगों से सम्बन्धित एक स्मरण-पत्र (Memorandum) भारतीय कारखाना आयोग (Indian Factory Commission) के पास भेजा गया। इस आयोग ने श्रमिकों की माँगों को स्वीकार कर लिया, परन्तु तत्कालीन भारत सरकार ने सिफारिशों को कार्यान्वित नहीं किया। श्री लोखाडे के नेतृत्व में आन्दोलन बराबर चलता रहा। सन् १८९० में श्री लोखांडे ने श्रमिकों को संगठित किया। इस संगठन का नाम 'Bombay Mill-hands Association' रखा गया। इस संघ की स्थापना से भारतीय श्रमिकों में श्रमसंघ का इतिहास आरम्भ होता है। इसी समय श्री लोखाडे ने 'दीनबन्धु' नामक एक पत्र भी निकाला जिसके माध्यम से श्रमिकों की माँगों को उनके अधिकारियों व सरकार तक पहुँचाया जाता था।

श्रम संघ आन्दोलन के प्रथम चरण की मुख्य विशेषतायें थीं—(1) श्रमिकों में अभी यह भावना पैदा नहीं हो पाई थी कि आन्दोलन द्वारा उन्हें अपने जीवन एवं कार्य दशाओं में क्रांतिकारी सुधार लाना है। (२) यह आन्दोलन स्वतः ही विकसित हो गया था। (३) इसका विकास भारत के सभी उद्योगों में समान रूप से नहीं हो पाया था। सन् १८९१ में कारखाना अधिनियम (Factory Act 1891) पास हुआ और इसके साथ ही हम भारतीय श्रम-संघ आन्दोलन के प्रथम चरण की इति श्री करते हैं। श्री लोखाडे तथा श्री बंगाली की मृत्यु से आन्दोलन की गति कुछ रुक सी गई।

द्वितीय चरण—सन् १९०४ में भारत में वस्त्र मिलों की प्रगति तेज गति से होने लगी। बढ़ी माँगों को पूरा करने के लिये श्रमिकों से कई घण्टों काम कराया जाने लगा। वैधानिक नियन्त्रण के अभाव से मिल-मालिकों ने खूब मनमानी की। परन्तु यह स्थिति अधिक न चल सकी। श्रमिकों में घोर असन्तोष फैल गया। सन् १९०५ में बंगाल विभाजन के समय श्रम आन्दोलन ने पुनः सिर उठाया। राजनीतिक नेताओं ने भी श्रमिकों का पक्ष लिया। स्वदेशी आन्दोलन जो इसी समय शुरू हुआ था, उसने भी श्रमिकों की दशाओं को सुधारने के प्रयत्न में सहायता दी। मन्दी के बाद जब व्यवसाय में कुछ पुनरुत्थान हुआ तो श्रमिकों द्वारा अधिक मजदूरी की माँग की गई। इन सबके परिणामस्वरूप सन् १९०५ और १९०६ के मध्य हड़तालों की एक बाढ़ सी आ गई। बम्बई की वस्त्र मिलों में काम के घण्टों में वृद्धि के कारण

हड़तालें हुई, रेलवे कर्मचारियों ने वेतन वृद्धि के लिए हड़तालें की तथा इसी प्रकार कलकत्ते के सरकारी प्रिंटिंग प्रेस मे भी हड़ताल हुई। इसी समय श्रमिकों के कुछ संगठन भी बन गए जैसे सन् १९०५ में कलकत्ता मे मुद्रक संघ श्रमिकों की एक अन्य महत्वपूर्ण संस्था 'कामगर हित वर्धक सभा' (Workers Welfare Association) का निर्माण हुआ। इस संस्था ने 'Labour News' शीर्षक एक साप्ताहिक पत्र निकाला। इस संगठन ने श्रमिकों के रहन-सहन की तथा काम करने की दशाओं में सुधार करने के लिये, उनके झगड़ों को निपटाने के लिए, काम के घण्टों में कमी करने के लिए तथा दुर्घटना की दशा मे उन्हे क्षतिपूर्ति दिलाने के लिये अनेक सफल प्रयत्न किए गये तथा सरकार को भी प्रार्थना-पत्र (Petitions) भेजे गये जिनके परिणामस्वरूप सन् १९११ मे पुन. कारखाना अधिनियम (Factory Act 1911) पास हुआ।

श्रम आन्दोलन के इस द्वितीय चरण के अन्त तक भी हमारे श्रमजीवी एक नियमित संस्था के रूप में संगठित नहीं हो सके। श्रमिक अपनी शिकायतों के लिये छोटी-छोटी समितियाँ बना लेते थे; कभी-कभी सरकार को प्रार्थनापत्र भेज देते थे, और कभी अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए हड़तालें कर लेते थे। इस काल मे आन्दोलन का मार्ग-दर्शन करने के लिये कोई श्रेष्ठ नेता नही था।

तृतीय चरण—प्रथम महायुद्ध के अन्त तक श्रमसंघ आन्दोलन अत्यन्त धीमी गति से बढ़ा। श्रमसंघो का वास्तविक प्रारम्भ युद्धोपरान्त काल मे हुआ जबकि अनेक कारणोवश श्रमिको मे असन्तोष तथा रक्षा की भावना पैदा हो गई थी। श्रमिक अशिक्षित थे। उनमे अनुशासनहीनता थी न उनका कोई नेता था और न ही कोई संगठन।

युद्ध के बाद के समय मे औद्योगिक श्रमिको मे जागृति आगई। युद्ध से लौटे हुये सैनिको ने अन्य देशो के श्रमिको की अच्छी दशाओं का वर्णन किया। फिर रूसी क्रान्ति से भी अन्य देशों मे एक क्रान्ति की लहर पैदा हो गई जिससे भारतीय श्रमिक भी अछूते न रहे। इसी समय हमारे कुछ राजनैतिक नेताओं ने भी श्रमिकों के संगठन मे रुचि दिखलाई। उदाहरणार्थ, लोकमान्य तिलक, ऐनीबिसेन्ट और महात्मा गाँधी ने जो आन्दोलन चलाए उनसे भारतीय श्रमिक संघ आन्दोलन को काफी प्रेरणा व बल मिला। महात्मा गाँधी के सन् १९२१ के असहयोग आन्दोलन का औद्योगिक श्रमिको पर बड़ा गहरा प्रभाव पडा। उन्ही के प्रयास स्वरूप Ahmedabad Textile Labour Association की स्थापना की गई। इस सगठन ने श्रमिकों के संघर्षों को अहिंसात्मक ढंग से निपटाने पर अधिक बल दिया। इसके अतिरिक्त 'अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन' (International Labour Organisation) की स्थापना होने से भी श्रमिको मे आत्म-सम्मान की भावना पैदा हुई और उन्हे यह अधिकार मिल गया था कि इस संघ के वार्षिक सम्मेलनों मे अपना एक प्रतिनिधि

भेज सके। इसका परिणाम यह हुआ कि सन् १९२० में श्रमिकों की एक केन्द्रीय संस्था (All India Trade Union Congress) बनाई। इसने श्रमसंघ आन्दोलन को काफी बढ़ावा दिया। सन् १९१९-२३ के बीच अनेक श्रमसंघ बने। किन्तु उसके सम्मुख अनेक कठिनाइयाँ थी, जैसे नियत संविधान का अभाव, पैसे की कमी, पदाधिकारियों में काम का उचित विभाजन होना आदि। कुछ संघ जैसे जमशेदपुर श्रमसंघ, बम्बई टैक्सटाइल लेबर संघ, गिरनी कामगर महामण्डल, बम्बई, आदि पूर्णतया सुव्यवस्थित थी और इनके सदस्यों की संख्या कई हजार से अधिक थी किन्तु अन्य संघों में सदस्य संख्या बहुत थोड़ी थी तथा इनका संगठन भी ढीला-ढाला था। चाय बागानों में काम करने वाले श्रमिकों में किसी प्रकार का संगठन नहीं था।

चतुर्थ चरण—सन् १९२६ में Indian Trade Union Act पास हुआ। यह अधिनियम भारतीय श्रमसंघ आन्दोलन के इतिहास में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखता है। रजिस्टर्ड श्रमसंघों को वैधानिक मान्यता प्राप्त हो गई। श्रमसंघों का रजिस्ट्रेशन बड़ी तेजी से होने लगा और इससे जनता के सम्मुख इनका महत्व स्पष्ट हो गया। यही नहीं मिल-मालिक भी इनके महत्व को स्वीकार करने लगे।

सन् १९२६ के बाद से श्रम आन्दोलनों का नेतृत्व साम्यवादियों के हाथ में पहुँच गया। ये साम्यवादी श्रमसंघ आन्दोलन की आड़ में अपना स्वार्थ सिद्ध करने लगे। अन्य देशों के कुछ साम्यवादी जैसे ब्रिटिश साम्यवादी दल के नेता स्प्रेट एवं ब्रैडल सन् १९२७ में कानपुर श्रमसंघ काँग्रेस के अधिवेशन में भाग लेते देखे गये। सन् १९२७ में आन्दोलन में दो दल हो गये। एक साम्यवादियों का और दूसरा सुधारवादियों का। सन् १९२७ में साम्यवादियों ने नये संघों को संगठित करने तथा सुधारवादियों के नियन्त्रण के संघों को छीनने के उद्देश्य से 'Workers' Peasants' पार्टी बनाई। बम्बई में Girni Kamgar Union बनाई गई जिसकी सदस्य संख्या ५४,०१० थी। दोनों दलों में खुला संघर्ष चल पड़ा जो लगभग छः माह तक चलता रहा। इस बीच अनेक हड़तालें होती रहीं सन् १९२८ में झरिया में साम्यवादियों ने अखिल भारतीय श्रमसंघ काँग्रेस पर अपना प्रभुत्व जमाने का प्रयास किया। तब सरकार के कान खड़े हुये और उसने दमन व सुधार के प्रयत्न किये। दमन नीति के अन्तर्गत अनेक साम्यवादी नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया तथा इन पर मुकदमे चलाये गये। यह मुकदमा Meerut Trial के नाम प्रसिद्ध है। यह मेरठ में चार वर्षों तक चलता रहा तथा साम्यवादी नेताओं को अनेक वर्षों तक कारागार में रहना पड़ा। सुधार का जो आश्वासन दिया गया था, उसके फलस्वरूप सन् १९२८ में श्रम शाही कमीशन (Royal Commission on Labour) की नियुक्ति की गई।

अतः घटनाओं के परिणामस्वरूप श्रमसंघ आन्दोलन में गहरी फूट पड़ गई। इस फूट से आन्दोलन में बड़ी कमी आ गई। सन् १९२९ में पंडित जवाहरलाल

नेहरू की अध्यक्षता में नागपुर में अखिल भारतीय श्रमसंघ कांग्रेस का दसवां अधिवेशन हुआ, जिसमें क्रांतिकारी दल वाले कुछ प्रस्तावों को पास करने में सफल हो गये। जिनमे से मुख्य प्रस्ताव थे—श्रम के शाही कमीशन का बहिष्कार करना तथा अखिल भारतीय श्रमसंघ कांग्रेस को मास्को में होने वाली तृतीय अन्तर्राष्ट्रीय सभा के साथ सम्मिलित करना। इन प्रस्तावों के पास होने से कुछ लोगों ने अखिल भारतीय श्रम-संघ कांग्रेस को छोड़कर यथार्थ नीति के आधार पर All India Trade Union Federation की स्थापना की। इस Federation ने श्रमिकों के हितों की रक्षा के लिये अपेक्षाकृत अधिक रचनात्मक रीति को सामने रखा।

पंचम चरण—यह वह समय था जब महात्मा गांधी ने अपना Civil Disobedience आंदोलन शुरू किया था (१६३०)। इस आन्दोलन के परिणामस्वरूप राजनैतिक नेताओं का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ। इसी समय घोर आर्थिक मन्दी के कारण मिल-मालिकों ने भी श्रमिकों की छटनी तथा उनकी मजदूरियों में कमी की। श्रमिकों ने इसके विरुद्ध आवाज उठाई तथा हड़तालें की, परन्तु असंगठन के कारण उन्हें अधिक सफलता न मिली। सन् १६३१ मे Trade Union Congress मे पुन: फूट पड़ गई और Red Trade Congress के नाम से नए संगठन का प्रादुर्भाव हुआ। रेलवे कर्मचारियों का भी अपना एक पृथक फेडरेशन था। इस फेडरेशन में श्रम संस्थाओं मे एकता लाने के उद्देश्य से सन् १६३१-३२ में एक मिली-जुली सभा बुलाई। इस सभा की कार्यवाहियों के परिणामस्वरूप National Trade Union Federation नामक एक नये संगठन का जन्म हुआ। रेलवे कर्मचारियों के श्रमसंघ भी इसमे सम्मिलित थे। दिसम्बर, १६३७ मे नेशनल ट्रेड यूनियन कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन मे ट्रेड यूनियन कांग्रेस को मिलाने का प्रस्ताव रखा गया। अप्रैल १६३८ मे नागपुर में Trade Union Congress इस Federation में मिल गई।

षष्ठम चरण—श्रमसंघ आंदोलन का छटा चरण द्वितीय महायुद्ध सन् १६३६ से प्रारम्भ होता है। श्रमसंघों की एकता में पुनः विच्छेद पैदा हो गया। कांग्रेसी नेता जेल मे डाल दिये गये और अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस मे साम्यवादियों का प्रभाव बढ़ने लगा। श्री एम० एन० राय और उनके अनुयायियों ने एक अलग संस्था बनाई जिसका नाम था Indian Federation of Labour। इस संगठन को सरकार से भी आर्थिक सहायता मिलती रही और इसी कारण इसको जनता का पूर्ण समर्थन प्राप्त न हो सका।

सन् १६४४ में भारत सरकार ने इस बात को स्वीकार कर लिया कि अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस और इण्डियन फेडरेशन ऑफ लेबर, इन दोनों ही संस्थाओं को बारी-बारी से अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में प्रतिनिधित्व करने का अधिकार दिया जाय। अत: सन् १६४४ में फेडरेशन से और सन् १६४५ मे ट्रेड यूनियन कांग्रेस से प्रतिनिधि भेजने के लिए परामर्श लिया गया। युद्ध युग मे श्रमिकों के सहयोग को पाने के लिए सरकार ने कुछ कल्याण कार्य भी किये तथा Welfare

Committees की स्थापना की। कुछ सरकारी मिलों में श्रमिकों के कल्याण की देख-भाल के लिये Welfare Officers की नियुक्ति की गई। श्रमिकों के लिए केन्टीन की व्यवस्था की गई। औद्योगिक संघर्षों को निपटाने के लिए भी उचित व्यवस्था की गई। सन् १९४४ में श्रम जांच समिति की स्थापना हुई।

सप्तम चरण—सन् १९४८ में पुनः एक विभाजन हुआ। समाजवादी अलग हो गए और उन्होंने 'हिन्द मजदूर सभा' (Hind Mazdoor Sabha) के नाम से अपना एक अलग मजदूर संघ बनाया। श्री एम० एन० रॉय की जो भारतीय फेडरेशन ऑफ लेबर थी वह इसी में विलीन हो गई। मई सन् १९४९ में **प्रो० के० टी० शाह** तथा **श्री एम० के० बोस ने** श्रमिकों का एक नया संगठन बनाया जिसका नाम Joint Trade Union Congress पड़ा। अखिल भारतीय रेलवे कर्मचारी संगठन में समाजवादियों का प्रभुत्व छा गया और **श्री जयप्रकाशनारायण** इसके सभापति हुए। **श्री हरिहरनाथ शास्त्री** की अध्यक्षता में रेलवे कर्मचारियों का एक और संगठन बना जिसका नाम 'भारतीय राष्ट्रीय रेलवे कर्मचारी संगठन' पड़ा।

वर्तमान स्थिति—वर्तमान समय में इण्डियन नेशनल ट्रेड यूनियन कांग्रेस देश के श्रमिक संघों की सबसे अधिक प्रतिनिधिक संस्था है। इसमें लगभग ८०० संघ सम्मिलित हैं, जो लगभग १२ लाख श्रमिकों का प्रतिनिधित्व करते हैं। इसके बाद ऑल इण्डिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस है जो किसी समय श्रमिकों की प्रतिनिधि संस्था थी, परन्तु कम्यूनिस्टों के घुस आने पर जब से भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ कांग्रेस उससे अलग हो गई तब से उसकी संख्या घटती जा रही है। आल इण्डिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस के अतिरिक्त सोशलिस्ट पार्टी द्वारा आयोजित हिन्द मजदूर सभा भी है तथा सन् १९४९ में यूनाइटेड ट्रेड यूनियन कांग्रेस की और स्थापना हुई। इस प्रकार भारत में आज ४ प्रमुख अखिल भारतीय श्रम संगठन हैं, जिनके सदस्यों की संख्या निम्नलिखित तालिका से ज्ञात की जा सकती है :—

तालिका I

रजिस्टर्ड श्रम संघ तथा उनकी सदस्यता

केन्द्रीय संघ

	१९५५—५६	१९५६—५७	१९५७—५८	१९५८—५९
रजिस्टर में लिखित संघों की संख्या	१७४	१७३	२२३	२१२
रिटर्न फायल करने वाले संघों की संख्या	१०५	१०२	१३६	१६४
रिटर्न फायल करने वालों की सदस्यता	२,१२,८४८	१,८७,२९१	३,४२,२९५	२,९८,८१७

राजकीय संघ

	१९५५—५६	१९५६—५७	१९५७—५८	१९५८—५९
रजिस्टर में लिखित संघों की संख्या	७,९२१	८,१८०	९,८२२	८,४२१
रिट्स फाइनल करने वाले संघो की संख्या	३,९०१	४,२९७	५,३८४	५,८७६
रिट्स फाइल करने वालों की सदस्यता	२०,६१,८८४	२१,८९,४६७	२६,७२,८८३	३३,४८,३३७

तालिका

	एफोलियेटेड संघो की सदस्यता			सदस्यता		
	१९५७	१९५८	१९५९	१९५७	१९५८	१९५९
१. इण्डियन नेशनल ट्रेड यूनियन कांग्रेस	६७२	७२७	८८६	९,३४,३८५	९,१०,२२१	१०,२३,३७१
२. हिन्द मजदूर सभा	१३८	१५१	१८५	२,३३,९९०	१,९२,९४२	२,४१,६३६
३. अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस	—	८०७	८१४	—	५,३७,५६७	५,०७,६५४
४. यूनाइटेड ट्रेड यूनियन कांग्रेस	—	१८२	१७२	—	८२,००१	९०,६२९
योग	—	१८६७	२०५७	—	२७,२२,७३१	१८,६३,२९०

भारतीय श्रम संघ ग्रान्दोलन के तीव्र विकास में बाधाएँ एवं उनको दूर करने के लिए सुझाव

भारतीय श्रम संघ ग्रान्दोलन के इतिहास के अध्ययन से यह स्पष्ट पता लगता है कि कुछ उन्नतशील पाश्चात्य देशों की अपेक्षा हमारे यहां ग्रान्दोलन की गति उतनी तेज नही रही जितनी होनी चाहिए। उदाहरण के लिए ग्रेट ब्रिटेन मे ही श्रम संघ ग्रान्दोलन ने काफी प्रगति की है और वहाँ के श्रमिकों को भारतीय श्रमिकों की अपेक्षा

कही अधिक सुविधाएं प्राप्त हैं। सच बात तो यह है कि भारतीय श्रम संघ आन्दोलन के तीव्र विकास मे प्रारम्भ से ही अनेक कठिनाइयां व बाधाएं रही हैं। इन बाधाओं को हम दो शीर्षकों के अन्तर्गत अध्ययन कर सकते हैं :—(I) आन्तरिक बाधाएं। (II) बाहरी बाधाएं।

(I) आन्तरिक बाधायें

आन्तरिक बाधाओं के अन्तर्गत हम प्राय: निम्नलिखित घटकों का समावेश कर सकते हैं :—

भारतीय श्रम-संघ की बाधायें हैं : १३

I. आन्तरिक बाधायें

(१) शिक्षा का निम्न स्तर।
(२) दरिद्रता तथा मजदूरी का निम्न स्तर।
(३) श्रमिकों की विभिन्नता।
(४) श्रमिकों की प्रवासी प्रवृत्ति।
(५) श्रमसंघों के नेताओं का श्रमिकों में से न होना।
(६) श्रमसंघों में संयुक्त प्रयत्न व एकता का अभाव।
(७) पारस्परिक सहयोग एवं कल्याणकारी कार्यों को भली प्रकार न समझना।
(८) निम्न जीवन-स्तर तथा काम करने की असन्तोषजनक दशायें।
(९) श्रम नेताओं के प्रति द्वेष।
(१०) श्रमिकों में अनुशासनहीनता।
(११) विशाल क्षेत्र।

II. बाहरी बाधायें

(१२) मध्यस्थों का विरोध।
(१३) नियोक्ताओं का असहानुभूतिपूर्ण व्यवहार।

(१) शिक्षा का निम्न स्तर—हमारे देश में शिक्षा का सामान्य स्तर बहुत नीचा रहा है। भारतीय औद्योगिक श्रमिक प्राय: अपढ़ हैं, अस्तु वे अनुशासन के महत्व को नही समझते और न संघों को बुद्धिमानी व चतुरता के साथ चला ही सकते हैं। उनके लिए तो इनका महत्व केवल हड़ताल करके अपनी माँगों को स्वीकृत कराना मात्र था। जब उनकी मागें पूरी हो गई तब उन्होने श्रम संघो के कार्यों में रुचि लेना बन्द कर दिया। ऐसी परिस्थिति मे हम श्रम संघों के तीव्र विकास की आशा कैसे कर सकते हैं।

(२) दरिद्रता तथा मजदूरी का निम्न स्तर—श्रम संघो के तीव्र विकास मे सबसे बड़ी बाधा श्रमिकों की निर्धनता की रही है। श्रम संघों को चलाने के लिए पैसे का एक मात्र स्रोत चन्दा है। भारतीय औद्योगिक श्रमिकों को बहुत कम वेतन मिलता है; इस कारण हमारे अनेक श्रमिक तो चन्दा दे ही नहीं पाते। यदि कुछ देते भी हैं, तो वह शुल्क इतना न्यून होता है कि उससे संघ को यथेष्ट द्रव्य प्राप्त नही हो सकता। अत: हमारे श्रम संघ उतना अच्छा कार्य नही कर पाते जितना कि उनसे आशा की जाती है। यही नही भारतीय श्रमिक केवल समस्या-

त्मक लाभ के लिए शुल्क देने में संकोच करता है और अपने शुल्क के बदले में अपनी समस्त आपत्तियों से बचाव अथवा थोड़ी अवधि ही में वेतन वृद्धि की आशा रखता है।

(३) श्रमिक वर्ग की विभिन्नता—भारतीय श्रमिक वर्ग में विभिन्न प्रकार के धर्मों, विचारधाराओं, रीति रिवाजों और आदर्शों के श्रमिक पाये जाते हैं; अतः उनको संगठित करने में बहुत समय लगता है। मिल-मालिक श्रमिकों की इस विशेषता से पूर्णतया परिचित थे और उन्होंने इसे अपने लाभ के लिए प्रयोग किया। धर्म, भाषा तथा जाति के प्रश्न को लेकर अनेक बार श्रमिकों में फूट पड़ी, जिससे श्रम संगठन का आधार दृढ़ न हो सका। सन् १९४३ में लखनऊ, दिल्ली और कलकत्ते में साम्प्रदायिक आधार पर कुछ श्रम संघों का निर्माण हुआ; परन्तु सरकार ने उन्हें मान्यता देने से इन्कार कर दिया।

(४) श्रमिकों की प्रवासी-प्रवृत्ति—भारतीय श्रमिक स्वभाव से ही प्रवासी रहा है। वे दूर-दूर के गाँवों से नौकरी की खोज में आते हैं और चले जाते हैं। अतः अधिकांश भारतीय श्रमिक अभी तक अपने उत्तरदायित्व व अधिकारों के प्रति पूरी तरह जागरूक नहीं हो सके। वे एक स्वतन्त्र एवं स्थायी वर्ग के रूप में विकसित नहीं हो पाये और न अपनी प्रस्तुति को मान्यता ही दिला सके। प्रायः देखा गया है कि हड़ताल या तालाबन्दी के समय तो वे गाँव चले ही जाते हैं ऐसी स्थिति में कोई भी संयुक्त प्रयास क्योंकर सफल हो सकता है? प्रारम्भ में श्रमिकों को उत्साह रहता है परन्तु कुछ अवधि के बाद जब वे गाँव से वापिस लौटते है तब तक उनका सारा जोश ठण्डा हो जाता है। कुछ लोगों को तो गाँव में ही आश्रय मिल जाता है, अतः वे वापिस ही नहीं आते। श्रम संघ आन्दोलन के दृढ़ विकास के लिए औद्योगिक क्षेत्रों में ही श्रमिकों का रहना बहुत जरूरी था। किन्तु ऐसा नहीं हो सका और परिणामतः इस आन्दोलन को विभिन्न राजनैतिक पक्षों के नेताओं ने अपने व्यक्तिगत स्वार्थों का अखाड़ा बना लिया।

(५) श्रम-संघों के नेताओं का श्रमिकों में से न होना—भारतीय श्रम-संघ आन्दोलन के पर्याप्त विकास में सबसे बड़ी बाधा यह रही है कि श्रमिकवर्ग में से ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं हुआ जो उसका नेतृत्व कर सके। फलतः वकीलों, समाज सुधारकों तथा राजनैतिक नेताओं ने श्रम-संघ आन्दोलन का नेतृत्व किया। ये लोग श्रमिकों में सच्ची रुचि नहीं रखते, क्योंकि उनका निजी स्वार्थ अथवा विशिष्ट दृष्टिकोण होता है। इन नेताओं में अपने-अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिये झगड़े होते रहे हैं जिनका लाभ मिल-मालिकों ने उठाया। आज भी जितने श्रम-संघ हैं उन पर किसी न किसी राजनीतिक दल का प्रभुत्व है।

(६) श्रम-संघों में संयुक्त प्रयत्न व एकता का अभाव—आजकल हमारे देश में श्रम-संघों की चार केन्द्रीय संस्थाएं हैं। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य लघु स्वतन्त्र शाखाएं भी हैं। भारतीय श्रम-संघ आन्दोलन के इतिहास में एक मात्र अवलोकन

से यह स्पष्ट है कि हमारे यहां बड़े संगठनों में से छोटे-छोटे संगठन पैदा होते रहते हैं। देश में किसी भी समय श्रम-संघों का एक संयुक्त मोर्चा नहीं रहा। श्रम-संघों की केन्द्रीय संस्थाओं में परस्पर विरोध और वैमनस्य चलता रहा। हमारे श्रम-संघ, श्रमिकों के हितों की रक्षा करने के बजाय, विचारधाराओं और अपने-अपने आदर्शों एवं मान्यताओं के आधार पर एक दूसरे के कार्यों को विफल करने के प्रयास करते रहते हैं। अशिक्षित, अज्ञानी एवं रूढ़िवादी भारतीय श्रमिकों को व्यर्थ विचार-धाराओं के युद्ध में पिसना पड़ा जिससे श्रमिकों का आन्दोलन तीव्रगति से प्रगति न कर सका।

(७) पारस्परिक सहयोग एवं कल्याणकारी कार्यों को भली प्रकार न समझना—किसी भी संगठन के दृढ़ विकास के लिये पारस्परिक सहयोग का होना बहुत आवश्यक होता है। इसके अतिरिक्त कोई भी संगठन अपने सदस्यों के जीवन के जितने भी अधिक पहलुओं से सम्बन्धित होगा, वह उतना ही अधिक दृढ़ होगा। दुर्भाग्यवश भारतीय श्रम-संघों का संगठन श्रमिकों के केवल कुछ पहलुओं को लेकर ही हुआ। श्रम-संघ श्रमिकों के अधिकारों की माँग करने के साथ-साथ कुछ रचनात्मक कार्य (जैसे कल्याण कार्य) कर सकते थे एवं उनके द्वारा उनके जीवन के प्रत्येक पहलू को स्पष्ट कर सकते थे। यदि ऐसा होता तो श्रम-संघों को श्रमिकों का निश्चय रूप से सक्रिय सहयोग मिलता। परन्तु दुर्भाग्य से श्रमिकों में पारस्परिक सह-योग की भावना का शुरू से ही अभाव रहा है। श्रमिक हड़ताल करते समय श्रम-समाज के कल्याण की अपेक्षा निज के हित को प्राथमिकता देता रहा है। इससे भी आन्दोलन के विकास में कठिनाई रही है।

(८) निम्न जीवन-स्तर तथा काम करने की असंतोषजनक दशाएं—भारतीय श्रमिकों को कई घण्टे लगातार काम करना पड़ता है। काम करने के बाद उनमें इतनी शक्ति व स्फूर्ति नहीं रहती कि वे श्रम-संघ की क्रियाओं में भाग ले सकें। उन्हें ऐसी अस्वस्थ परिस्थितियों में काम करना पड़ता है कि उन्हें सोचने-विचारने की क्षमता ही नहीं रहती। निम्न जीवनस्तर के कारण उनका शारीरिक विकास भी कुंठित हो गया है। शारीरिक एवं मानसिक दोनों ही दृष्टिकोणों से दिवालिया श्रमिक से हम यह आशा नहीं कर सकते कि वह किसी दृढ़ संगठन के कार्यों में सक्रिय भाग लेकर उसे सफल बनाने में सहयोग प्रदान कर सके। श्रम-संघों ने हमारे मजदूरों के निम्न जीवनस्तर को ऊँचा उठाने की दशा में कोई रचनात्मक प्रयास नहीं किया।

(९) श्रम नेताओं का प्रतिद्वेष—अधिकांश श्रमजीवियों में अपने नेताओं के प्रति सद्भावना नहीं होती। जनसाधारण भी उन्हें प्रायः विप्लवकारी व आग उगलने वाला कहकर बदनाम करते हैं।

(१०) श्रमिकों में अनुशासनहीनता—अशिक्षा, अज्ञानता व रूढ़िवादिता के

कारण भारतीय श्रमिक नियन्त्रण व शासन के अन्तर्गत रहने का आदी नही रहता। अतः श्रम-संघ की ओर से वह प्रायः लापरवाह रहता है।

(११) विशाल क्षेत्र—हमारे देश मे श्रमजीवी बहुत बड़े क्षेत्र में फैले हुये हैं, और कुछ दशाओं में तो उन तक पहुँच भी नही हो पाती। उदाहरणार्थ, आसाम के चाय के बागानो में अथवा नीलगिरी के कॉफी के बागानों मे काम करने वाले श्रमिकों से सम्बन्धित। दयनीय सूचनाओं को बड़ी आसानी से दबाया जा सकता है। बाहर वालो को उनकी जानकारी नही हो पाती। यह स्थिति भी श्रम-संघों की प्रगति मे बाधक है।

बाहरी बाधाएँ

(१२) मध्यस्थों का विरोध—सेवायोजकों एवं जॉबर्स का विरोध भी श्रम-संघ आन्दोलन की प्रगति मे बाधक सिद्ध हुआ है। श्रमिकों को गाँवो से लाना, शहर मे उन्हे काम तथा रोजगार दिलाना, आवास की व्यवस्था करना, ऋण दिलाना, बीमारी अथवा दुर्घटना मे उनकी सेवा करना, आदि सभी कार्य इन मध्यस्थो के द्वारा ही किये जाते है। श्रमिको के शोषण पर ही इनका अस्तित्व निर्भर करता है। श्रमिको मे श्रम-संघ का दृढ होने का आशय यह था कि इन मध्यस्थों का अस्तित्व खतरे में पड़ जाता। अतः यह लोग सदैव यही प्रयत्न करते थे कि श्रमिको मे फूट पडी रहे और वे कभी भी सगठित न हो सकें। जो श्रमिक संघ के प्रति असहानुभूति रखने हैं उन्हे तरह-तरह से परेशान किया जाता है। जब कभी संयुक्त प्रयत्न के द्वारा हड़तालें होती हैं, तो ये मध्यस्थ इन हड़तालों को विफल कराने की कोशिश करते है। इस कार्य मे इन्हे मिल-मालिकों से प्रेरणा व वित्तीय सहायता भी मिलती है। इस प्रकार इन मध्यस्थों का निरन्तर विरोध भी आन्दोलन की प्रगति मे बाधक रहा है।

(१३) नियोक्ताओं का असहानुभूतिपूर्ण व्यवहार—मिल मालिकों का असहानुभूतिपूर्ण व्यवहार भी श्रम-संघ आन्दोलन की एक बड़ी कठिनाई है। भारतीय नियोक्तागण यह नही समझते कि स्वच्छ व सुदृढ़ संघवाद हड़तालो के विरुद्ध बीमा का कार्य करता है। इसके फलस्वरूप अनियमित, अनधिकृत तथा बिजली की तरह क्षणिक हड़ताले नही हो पाती।

भारत में श्रम-संघ आन्दोलन को दृढ़ बनाने के लिये सुझाव

आज जबकि हम औद्योगिक दृष्टि से समृद्धिशाली बनना चाहते हैं, श्रमिकों के दृढ़ संगठन की बहुत आवश्यकता है। औद्योगिक विकास के लिये श्रमिकों के प्रति विश्वास एवं सहानुभूति का दृष्टिकोण अपनाना होगा, उनमे प्रजातान्त्रिक सिद्धान्तों को फूँकना होगा। श्री वी० वी० गिरि ने एक स्थान पर लिखा है, "श्रमिकों के हितो की रक्षा करने तथा उत्पादन के लक्ष्य को पूरा करने के लिए दृढ़ श्रम-संघ

आन्दोलन नितान्त आवश्यक है। यदि श्रम-संघ में इन उद्देश्यों को पूरा करने की क्षमता व दृढ़ता नहीं है तो भारत में पूर्ण समाजवादी प्रजातन्त्र के आधार पर बनाए जाने वाले औद्योगिक कलेवर की नीति हृदि नहीं होगी और राज्य अपने श्रेष्ठतम आदर्शों के होते हुये भी श्रमिकवर्ग को मौलिक अधिकार देने में असमर्थ रहेगा।" आधुनिक श्रम-संघवाद को दृढ़ करने के लिये हमारे निम्नलिखित सुझाव हैं :—

(१) एकता पैदा करना—केवल कानून की सहायता से ही श्रम-संघ आन्दोलन का आधार दृढ़ नहीं हो सकता। इसके लिए तो निज में बल की आवश्यकता है और इस हेतु एकता बहुत जरूरी है। श्रम-संघसंवाद के विकास के लिए यह आवश्यक है कि जो भी श्रमिक प्रजातान्त्रिक सिद्धान्तों में विश्वास रखते हैं, वे एक झण्डे के नीचे आकार मिल जायें और एक केन्द्रीय संस्था को जन्म दें। यदि ऐसी कोई केन्द्रीय संस्था बन जाती है तो वह श्रमिकों के लिए, सेवायोजकों के लिए तथा समस्त राष्ट्र के लिए महत्वपूर्ण सिद्ध होगी।

(२) राजनीतिक दलों से आन्दोलन को स्वतंत्र रखना—आज हमारा देश स्वतन्त्र हो गया है अतः श्रमिकों के लिए भी स्वतन्त्र वातावरण होना बहुत जरूरी है। अभी तक वे विभिन्न राजनैतिक दलों के प्रभाव में रहे हैं। इससे अनेक हानियों की आशंका रहती है। एक तो देश के प्रजातान्त्रिक विकास में बाधा पड़ती है और दूसरे श्रमिकों के हितों की रक्षा नहीं हो पाती। अतः श्रम-संघ के नेताओं को चाहिए कि वे श्रमिकों को हर प्रकार के राजनैतिक प्रभावों से अलग रखें। श्रम-संघ आन्दोलन का भावी संगठन श्रमिकों के लिये काम करना व रहने को श्रेष्ठतम दशाएं उपलब्ध करना होना चाहिए, तभी श्रम-संघ मजदूरों का सच्चा प्रतिनिधित्व कर सकते हैं।

(३) जाति भेद का दूर किया जाना—जाति प्रथा के कारण भारतीय श्रमिकों में जाति-भेद की भावना बहुत बलवती है। इसके कारण उनका स्थायी संगठन नहीं हो सका है। यही नहीं कुछ श्रमिकों ने तो साम्प्रदायिक आधार पर श्रम-संघों का निर्माण भी किया है। धर्म के आधार पर ऐसा एकीकरण सच्चा संघवाद नहीं कहा जा सकता। श्रम-संघ आन्दोलन के विकास के लिए श्रमिकों को जातिवाद से दूर रहना चाहिए। किसी अमुक उद्योग में श्रमिक किसी भी जाति, उप जाति अथवा धर्म के मानने वाले हों, किन्तु वे पहिले तो मजदूर हैं और हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई बाद में। अतः श्रम-संघ आन्दोलन की दृढ़ता के लिए यह आवश्यक है कि भविष्य में वे श्रमिकों का वास्तविक रूप में सच्चा प्रतिनिधित्व करें, किन्हीं सम्प्रदायों का नहीं।

(४) एक उद्योग में एक संगठन होना चाहिये—ऐसा होने से श्रमिकों में तथा उनके संगठन में एकता व सहयोग की भावना बढ़ेगी। इसके विपरीत अनेक

संगठन होने से उनमें पारस्परिक स्नेह अथवा एकता नहीं रह सकती। यदि संगठनों में संघर्ष होता रहा, तो इससे मिल-मालिक लाभान्वित होते है। इसी कारण **श्री वी० वी० गिरि** ने यह सुझाव दिया है कि श्रम-संघ के भावी दृढ़ निर्माण एवं विकास के **'एक उद्योग में एक संघ'** का सिद्धान्त अपनाया जाना चाहिये। इससे श्रमिकों व मिल-मालिकों में पारस्परिक सहयोग बढ़ेगा तथा औद्योगिक उन्नति होगी।

(५) लाभ-कोषों की स्थापना—श्रम-संघों को लाभकोषों (Benefit Funds) की स्थापना करनी चाहिए और उनकी धन राशि से श्रमिकों की बीमारी, मृत्यु, दुर्घटना आदि के समय आर्थिक एवं सामाजिक सुविधायें प्रदान की जानी चाहियें। इसका सुपरिणाम यह होगा कि एक तो श्रम-संघ निरन्तर क्रियाशील रहेंगे और दूसरे श्रमजीवी इनका महत्व समझकर सदैव अपने को इनसे सम्बद्ध करने का प्रयास करेंगे।

(६) हड़ताल कोषों की स्थापना—हमारे देश मे श्रमिकों की हड़तालें अधिकांश रूप मे सफल नहीं हुई हैं। प्रायः ऐसा देखा गया है कि लम्बी अवधि तक चलने के बाद अर्थाभाव के कारण श्रम-संघो को ही अन्त मे झुकना पड़ता है। बेचारा श्रमिक कब तक भूखा रह सकता है? दुःख सहने की भी एक सीमा होती है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि हड़ताल के समय श्रमिकों की भोजन की व्यवस्था के लिए एक कोष बनाया जाय। इस कोष की उपस्थिति मे मिल मालिक बहुत अधिक समय तक श्रमिको की माँगों के प्रति उदासीन नहीं रह सकते। बहुत सम्भव है कि हड़ताल की नौबत आने से पूर्व ही मिल-मालिकों का श्रमिकों से कुछ समझौता हो जाय।

(७) वित्त-व्यवस्था—कोई भी संस्था बिना पर्याप्त वित्त व्यवस्था के अधिक समय तक नहीं चल सकती। अतः यदि भविष्य मे श्रम-संघो को दृढ़ करना है, तो आन्तरिक एवं बाहरी साधनो से इनके वित्त की समुचित व्यवस्था होनी चाहिए। श्रमिक जो भी चन्दा दें, वह भले ही थोड़ा हो, परन्तु नियमित रूप से मिलता रहना चाहिए। यही नहीं दान के रूप में भी काफी धन एकत्रित किया जा सकता है। अपने प्रतिदिन के भोजन की भांति श्रमिकों को चाहिए कि चन्दा देना भी एक अनिवार्य कार्य समझें। तभी श्रम-संघों के संगठन में दृढ़ता आ सकती है।

(८) शत् प्रतिशत् सदस्यता होनी चाहिए—सदस्यो की संख्या संस्था की दृढ़ता का प्रतीक होती है। किसी भी उद्योग मे काम करने वाले सभी श्रमिकों को आपस मे संगठन रखना चाहिए। वे सब श्रम-संघ के सदस्य हों। "एक सब के लिए तथा सब एक के लिये" की भावना तभी पैदा हो सकती है। ऐसी भावना से श्रम-संघों के संगठन मे दृढ़ता आ सकती है।

(९) वैतनिक कर्मचारियों की नियुक्ति—भारतीय श्रम-संघों के संगठन में एक बहुत बड़ा दोष यह है कि इसके कर्मचारियों को अवैतनिक रूप में काम करना

पड़ता है। ऐसे कर्मचारी लगन व उत्साह से काम नहीं करते। अत: आवश्यकता इस बात की है कि श्रम-संघों का काम करने के लिए पूरे समय के वैतनिक कर्मचारियों की नियुक्ति की जाय।

(१०) **तांत्रिक विशेषज्ञों की नियुक्ति**—प्रत्येक श्रम-संघ में से कम से कम एक तांत्रिक विशेषज्ञ (Technical Expert) होना चाहिये जो संघ से सम्बन्धित उद्योग अथवा उद्योगों के विषय में सभी प्रकार का तांत्रिक ज्ञान रखता हो। इससे जनमत बनाने तथा जनता का समर्थन एवं सहयोग प्राप्त करने में बड़ी सुविधा होगी।

(११) **श्रमिकों में उत्तरदायित्व की भावना भरना**—श्री वी० वी० गिरि (Shri V. V. Giri) ने एक स्थान पर लिखा है, "वास्तव में, एक ऐसे समाज में जो समाजवाद की राह पर चल पड़ा हो और जिसमें श्रमिक उचित मजदूरी की माँग करते हों तथा जिसमें श्रमिकों के काम करने की उचित दशाओं पर निरन्तर ध्यान दिया जाता हो, उसमें श्रमिकों का काफी उत्तरदायित्व है, जो उन्हें पूरी तरह समझना तथा निभाना चाहिए। समाजवाद औद्योगिक प्रजातन्त्र की स्थापना पर जोर देता है जो श्रमिक से एक ओर अनुशासन की माँग करता है और दूसरी ओर उनके ऊपर सच्चाई एवं कुशलता से कार्य करने का उत्तरदायित्व रखता है। यह बिल्कुल सत्य है कि श्रमसंघों का कार्य-क्षेत्र केवल श्रमिकों की माँगों की पूर्ति तक ही सीमित नहीं रखना चाहिए वरन् उनमें अनुशासन एवं उत्तरदायित्व की भावना भरने के लिए प्रयास करना चाहिए। श्रमसंघों को प्रत्येक श्रमिक को उसके अधिकारों व कर्तव्यों के प्रति पूरी तरह जागृत करना चाहिए। ऐसी चेतना से सेवायोजकों व मजदूरों के पारस्परिक सम्बन्ध अच्छे होंगे जिसके फलस्वरूप उद्योग एवं राष्ट्र दोनों ही लाभान्वित होंगे।

(१२) **"कार्य धीरे करने की प्रवृत्ति" को रोकना चाहिये**—आजकल प्राय: देखा जाता है कि श्रमिकों द्वारा हड़ताल का एक नया तरीका चल पड़ा है, और वह है "काम को धीरे-धीरे करना" (Go Slow Tactics)। इससे मिल-मालिकों, उद्योग तथा राष्ट्र तीनों को ही नुकसान पहुँचता है। यहीं नहीं, श्रमिकों को स्वयं भी इससे हानि उठानी पड़ती है, क्योंकि धीरे-धीरे कार्य करने से उनकी कार्यक्षमता भी घटने लगती है। बाद में श्रमिक चाहने पर भी अधिक तीव्रगति से काम नहीं कर पाते। अत: श्रमसंघों को चाहिये कि श्रमिकों में इस दूषित प्रवृत्ति को रोकें, क्योंकि इसमें अन्तिम रूप में उनकी आय पर प्रभाव पड़ेगा और उनका जीवन-स्तर निम्न होता जायेगा।

(१३) **औद्योगिक प्रबन्ध में श्रम संघ के प्रतिनिधियों को भाग लेने की सुविधा देना**—वर्तमान युग में यह आवश्यक समझा जाने लगा है कि श्रमिकों को औद्योगिक प्रबन्ध में उपयुक्त भाग मिलना चाहिए। आधुनिक जनतन्त्रात्मक युग में

औद्योगिक उन्नति तभी हो सकती है, जब श्रमिकों के साथ समान स्तर पर व्यवहार किया जाये। यह कार्य श्रम संघों के प्रतिनिधियों को प्रबन्ध मे भाग लेने की सुविधा प्रदान करके किया जा सकता है। इससे निश्चय ही हमारे श्रमसंघ आन्दोलन की स्थिति सुदृढ़ होगी।

(१४) जनमत का समर्थन—श्रम-संघों की दृढ़ता के हेतु इनके पीछे जनमत का समर्थन होना ही आवश्यक प्रतीत होता है। श्रमिकों के महत्व को स्वीकार करते हुए जनता उनकी माँगों की सार्थकता एवं न्यायोचितता को भी स्वीकार करे तथा *व्यापक रूप से उन्हे मान्यता देने के लिए सम्बन्धित अधिकारियो को बाध्य करें।* श्रम संघ तथा श्रम वर्ग के लोग जनता का समर्थन पाकर ही सरकार को अपनी दशाओं को उन्नत करने के लिए उपयुक्त कानून बनाने के लिए बाध्य कर सकते है। अत: श्रम संघो को चाहिए कि श्रमिकों मे अपने अधिकारो की चेतना भरने के साथ-साथ अपने कर्तव्यो के प्रति भी जागरूकता पैदा करें तथा जनता पर अपनी माँगो की न्यायोचितता दर्शाने का प्रयास करें। इससे श्रम संघो का संगठन निश्चय ही सुदृढ होगा।

(१५) उचित नेतृत्व—किसी भी संस्था के सुदृढ़ विकास के लिए यह बहुत जरूरी है कि उसका नेतृत्व उचित व्यक्तियो के हाथ मे हो। हमारे श्रम संघ आन्दोलन की धीमी गति का सबसे बडा कारण यही रहा है कि इसका नेतृत्व अभी तक बाहरी व्यक्तियो के हाथो मे था। अत: भावी श्रम संघ आन्दोलन की दृढ़ता के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि योग्य व्यक्ति ही इसका नेतृत्व करें और वे भी श्रमिको मे से ही हो।

(१६) श्रमसंघों के कार्यों की उचित प्रशिक्षा की व्यवस्था—श्रम संघ आन्दोलन की दृढता के लिए यह भी आवश्यक है कि श्रमिकों को श्रम संघ के कार्यो मे पूरी-पूरी प्रशिक्षा प्रदान की जाए। जो व्यक्ति श्रम संघों के संगठन से सम्बन्धित हैं, उनके लिए ऐसा प्रशिक्षण बहुत जरूरी है। सौभाग्य का विषय है कि इसी उद्देश्य की पूर्ति के हेतु अभी हाल मे कलकत्ते मे Asian Trade Union College की स्थापना की गई है। कुछ समय से अहमदाबाद का Textile Labour Association श्रमिको को श्रम संघ के कार्यो मे शिक्षा देने का कार्य कर रही है। इसी प्रकार 'अखिल भारतीय श्रम संघ काँग्रेस' (I. N. T. U. C.) तथा 'हिन्दुस्तान मजदूर सेवा संघ' ने भी इस प्रकार की प्रशिक्षा की व्यवस्था की है। भारत सरकार भी इस दिशा मे सक्रिय कदम उठा रही है।

(१७) श्रम पत्रिका—श्रम संघ आन्दोलन के सुदृढ़ एवं नियमित विकास के लिए एक स्वतन्त्र 'श्रम पत्रिका' निकालना बहुत जरूरी है। इससे सबसे बडा लाभ यह होगा कि श्रमिक अपने अन्य साथियो की समस्याओ से परिचित होंगे तथा उनमे सक्रिय चेतना पैदा होगी। उन्हें अपने उद्योग तथा अपने कार्य के विषय मे महत्वपूर्ण

जानकारी उपलब्ध होगी। इस पत्रिका के माध्यम से श्रमिकों के हितों के लिए किए जाने वाले कार्यों की सूचना भी प्रसारित की जा सकती है। ऐसी पत्रिका के द्वारा श्रमिक अपने कल्याण कार्यों में स्वयं भी भाग ले सकते हैं।

STANDARD QUESTIONS

1. Examine the main features of the Trade Union Movement in India and discuss the main drawbacks in its healthy growth. How far has it been possible to eliminate these drawbacks ?
2. Trace briefly the history of labour movement in India. What are its present day weaknesses, and how can they be overcome.
3. Describe briefly the history of the Trade Union Movement in India. State its present position.

३३.

हमारी कुछ प्रमुख श्रम समस्याएँ (I)

(Labour Problems—I)

भारत में श्रम समस्याओं का उदय—भारत में श्रम समस्यायें अपेक्षाकृत कुछ नवीन ही हैं। प्राचीन काल में श्रमिकों की क्या स्थिति थी, उनकी काम करने की दशायें कैसी थीं और उनका जीवन-स्तर कैसा था, इस विषय में कोई व्यवस्थित विवरण नहीं मिलता। हां, तत्कालीन ग्रन्थों, साहित्य तथा रीति रिवाजों के आधार पर अनुमान से यह कहा जा सकता है कि प्राचीन श्रमिक असंगठित, अरक्षित किन्तु कार्य-कुशल थे। पुश्तैनी कलाकारों तथा दस्तकारों द्वारा व गाँवों व नगरों में कला व दस्तकारी के उद्योग-धन्धे किये जाते थे। ये लोग गाँव के सेवक भी होते थे तथा नगरों में दस्तकारी संघों (Craft Guilds) में संगठित होते थे। प्रवीण दस्तकारों (Master-craftsmen) के यहाँ कुछ लोग Apprentice दस्तकारी का काम सीखते थे। काम सीखने के बाद वे स्वयं पृथक व्यवसाय करने लगते थे। श्रमिक का जो आधुनिक अर्थ लिया जाता है, वह १९ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ही प्रारम्भ हुआ। सन् १८५७ के उपरान्त देश में नई शासन-व्यवस्था स्थापित हुई और आधुनिक उद्योगों व यातायात तथा आधुनिक अर्थ-व्यवस्था का विकास होना प्रारम्भ हुआ। जैसे-जैसे देश में उद्योगों का विकास हुआ और नए कारखानों की स्थापना हुई, रेल, तार, डाक, चाय, रबड, सूत, जूट, लौह, इत्यादि सभी प्रकार के उद्योगों का विकास होने लगा। औद्योगिक क्रान्ति तथा यन्त्रों द्वारा बड़े पैमाने पर उत्पादन के आधुनिक कारखाने की पद्धति ने ही श्रम की समस्याओं को जन्म दिया। २० वीं शताब्दी में इन समस्याओं का रूप उग्रतर होता गया। एक ओर तो आधुनिक उद्योगों के विकास और दूसरी ओर कुटीर-उद्योगों के विनाश तथा कृषि भूमि पर जनसंख्या के उत्तरोत्तर बढ़ने वाले भार के कारण, गाँवों से झुण्ड का झुण्ड कारीगर व किसान नगरों में जाकर श्रमिकों के रूप में आबाद होने लगे। औद्योगिक नगरों का विकास हुआ और देश में बम्बई, अहमदाबाद, कलकत्ता, कानपुर, मद्रास और टाटानगर जैसे श्रमिक-प्रधान नगर विकसित हुए।

इस प्रकार जो एक नया श्रमिक वर्ग उत्पन्न हुआ उसकी कुछ अपनी विशेषतायें थीं। उनके पास न धन था, न भूमि और न कोई अन्य सम्पत्ति। उनके निवास की भी जटिल समस्या थी। पर्याप्त व उपयुक्त घरों के अभाव में भारतीय श्रमिक वर्ग को नगरों की तंग, अंधेरी दुर्गन्धपूर्ण गलियों में नारकीय जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य होना पड़ा। प्रारम्भ में उसकी नौकरी की सुरक्षा के लिये कोई व्यवस्था नहीं की जा सकी। उनके काम करने के स्थान की दशायें बड़ी अनुपयुक्त व स्वास्थ्य के प्रतिकूल थी। उसे १२ से १५ घन्टे तक काम करना पड़ता था। उसके स्वास्थ्य व चिकित्सा तथा दुर्घटनाओं से रक्षा करने के लिये कोई प्रबन्ध न था। उद्योगपति श्रमिकों का निर्दयतापूर्वक शोषण करते थे और श्रमिक अपने स्वामी की दया पर निर्भर एक बेबस व असहाय शोषित प्राणी था।

किन्तु समय बदला। प्रथम विश्व-युद्ध ने श्रम-समस्याओं को ऊपर लाकर रख दिया। श्रम तथा पूंजी के बीच खाई, वर्गीय भेद-भाव तथा धन व आय की बढ़ती असमानता के कारण श्रमिकों और मिल मालिकों के बीच तीव्र वैमनस्य तथा द्वेष की आग भड़क उठी। प्रथम विश्व-युद्ध के दौरान में भारतीय उद्योगपतियों ने भारी लाभ कमाये और श्रमिकों से शक्ति से भी अधिक काम लिया। इससे मजदूरों में कुछ जागृति हुई और उन्होंने अपनी दशा सुधारने के लिए आवाज उठाई, यद्यपि इस आवाज में बल न था। युद्ध तथा युद्धोत्तर तेजी से मूल्यों में असाधारण वृद्धि के कारण जीवन-यापन की लागत बढ़ गई थी और इससे श्रमजीवियों में बड़ा असन्तोष छाया हुआ था। मंहगाई, भत्तों, बोनसों या लाभांशों और अधिक मजदूरी प्राप्त करने के लिये हड़तालों की देश में एक बाढ़ सी आ गई थी। श्रम-संघों का संगठन हुआ, श्रमिकों को अपने महत्त्व तथा अपनी शक्ति का ज्ञान हुआ। यही नहीं, अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संघों व सम्मेलनों में भी भारतीय श्रम संघों के प्रतिनिधि भाग लेने लगे। संयुक्त राष्ट्र संघ ने भारत को विश्व का आठवां औद्योगिक-देश घोषित किया तथा भारतवर्ष को अन्तर्राष्ट्रीय श्रम निर्णयों को स्वीकार कर लागू करना पड़ा।

कुछ श्रम कल्याणकारी कानूनों का भी निर्माण किया गया, किन्तु श्रमिकों में संगठन का अभाव होने के कारण उनके हितों की उचित रक्षा न हो सकी। सन् १९२६ में श्रम-संघ अधिनियम के पास होने से उनकी दशा में सुधार की आशा बंधी। सन् १९२९ में भारत सरकार ने रॉयल श्रम कमीशन की नियुक्ति की, जिसने अपना प्रतिवेदन सन् १९३१ में प्रस्तुत किया। इसके आधार पर श्रमिकों के निवास, कार्य-दशाओं, कार्य अवधि, नौकरी की सुरक्षा तथा उनके हितकारी कार्यों के सम्बन्ध में केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों ने अनेक अधिनियम पास किए। तत्पश्चात् सन् १९३७ में कांग्रेस मन्त्रिमण्डलों ने श्रम हित की एक प्रगतिशील नीति को कार्यान्वित कर न्यूनतम भृत्ति, नौकरी की सुरक्षा, क्षति-पूर्ति इत्यादि की व्यवस्था की।

देश की स्वतन्त्रता के उपरान्त श्रम आन्दोलन को एक नया बल मिला है। आज देश में औद्योगिक तथा अन्य आर्थिक क्षेत्रों में श्रमिकों के अनेक संगठन कार्य कर

रहे है। औद्योगिक श्रमिको की संख्या लगभग ६० लाख है, जो अधिकतर मिलों या कारखानों, खानो, बागानो, रेलों, जहाजो, बन्दरगाहो या निजी दूकानो या व्यापारिक संस्थाओं मे काम करते है। इनमे से लगभग ३० लाख श्रमिक देश के विभिन्न राज्यों के उन कारखानों मे काम करते है जो कारखाना अधिनियम के अन्तर्गत आते है, १० लाख श्रमिक रेल-उद्योग मे काम करते है तथा लगभग ७ लाख श्रमिक केन्द्रीय सरकार के संस्थानो मे लगे हुए है। आज का श्रमिक दिन प्रति दिन अपनी अवस्था व महत्व से परिचित होता जा रहा है। इस चेतना के परिणामस्वरूप श्रमिकों की स्थिति सुधरती जा रही है। तथापि कार्यक्षमता की दृष्टि से अन्य उन्नत देशों के समक्ष आने मे हमारे श्रमिको को अनवरत परिश्रम की आवश्यकता है। उनकी दशा मे सुधार तथा जीवन-स्तर को उठाने मे श्रम-संगठनो, उद्योगपतियों तथा सरकार तीनों ही को सहयोग करके उचित दिशा मे प्रगतिशील कदम उठाने होगे। देश के समुचित आर्थिक विकास के लिए एक पूर्ण सन्तुष्ट व सुखी वर्ग की आवश्यकता है। यदि भारत को अपने औद्योगिक विकास की प्रगति मे अन्य देशो से कदम मिलाकर चलना है, तो उसे अवश्य ही श्रम-समस्याओं को अविलम्ब हल करना पड़ेगा।

भारतीय श्रमिकों की विशेषतायें (Characteristics of Industrial Labour)

भारतीय कारखाना मजदूरों की प्रवासी प्रवृत्ति—भारतीय औद्योगिक श्रम की एक महत्वपूर्ण विशेषता, जिसके गम्भीर आर्थिक एवं सामाजिक परिणाम हुए हैं, *यह है कि वे अधिकतर गाँवों से आते हैं और यथा शीघ्र अवसर मिलने पर पुन: गाँवों* को वापस लौट जाते है। यही कारण है कि भारत मे अभी तक एक स्थायी श्रमिक-वर्ग का उदय नही हो पाया है।

पाश्चात्य देशो मे कारखानो मे काम करने वाले व्यावसायिक मजदूरों के स्थायी वर्ग होते हैं तथा वे खेती से एकदम सम्बन्ध विच्छेद कर लेते है। वहाँ प्राय: अधिकाश मजदूरों का पालन-पोषण शहरों मे ही होता है तथा कुछ तो गाँवों से अपना नाता पूर्णत: तोड़ कर शहर के निवासी बन जाते हैं। कारखानो के क्षेत्र का लालन-पालन पश्चिमी देशो के श्रमिक की श्रेष्ठता के लिए बहुत कुछ उत्तरदायी है, परन्तु इस देश के कारखानो का श्रमिक तो प्राय: प्रवासी होता है और शायद ही कभी गाँव से सम्बन्ध विच्छेद करता है। अधिकाँश मजदूरो का शीघ्र ही गाँव को लौटना तथा एक कारखाने मे अधिक दिन न टिकना अवश्य ही इस बात का द्योतक है कि वे कृषि कार्य अल्पकाल के लिये ही छोड़ते है। औद्योगिक केन्द्रो के अधिकाश श्रमिक असल में ग्रामीण ही होते हैं, जिनकी प्रारम्भिक शिक्षा गाँवो मे ही होती है और ग्रामीण रीति-रिवाजो मे ही उनकी आस्था होती है। उनका अभीष्ट गाँव लौटना ही होता है तथा ऐसा करने मे वे प्राय: सफल ही होते हैं।

प्रवासी प्रवृत्ति के कारण—श्रमिकों के गाँव से शहर आने के कारणो पर दृष्टिपात करने पर हम देखेंगे कि कृषि पर पड़ने वाली विपत्ति का पहला असर भूमिहीन

खेतिहर मजदूरों पर ही पड़ता है। अतः उन्हें गाँव छोड़कर कारखानों, नौका-निर्माण-स्थानों, बगीचों तथा रेल, सिंचाई आदि सरकारी निर्माण-कार्य वाले स्थानों में अधिक वेतन के लिए काम ढूंढने जाना पड़ता है। उन्नत आवागमन के साधन उनके इस प्रवास में सहायक होते हैं। उदाहरण के लिए, उत्तर प्रदेश, बिहार, उड़ीसा आदि राज्यों तथा बम्बई के रत्नगिरि आदि कुछ जिलों में जन-घनत्व तथा भू-भार इतना अधिक है और अनार्थिक जोतें इतना भयानक रूप धारण कर चुकी हैं कि साधारण कृषक जीविकोपार्जन के हेतु शहर में जाने को बाध्य हो जाते हैं। इस प्रवास कार्य में संयुक्त परिवार प्रणाली भी सहायक होती है। परिवार के कुछ सदस्य अपने घर तथा खेत से सम्बन्ध विच्छेद किए बिना ही उसे परिवार के अन्य व्यक्तियों की देख-रेख में छोड़ कर गाँव से चले जाते हैं। कभी-कभी कृषक गाँव के साहूकार से बचने या भूमि और पशु खरीदने के लिए पर्याप्त धन कमाने के उद्देश्य से शहरों में नौकरी तलाश करते हैं। फिर कभी अपनी जीविका और भावी जीवन को उत्तम बनाने की आशा से निम्न श्रेणी के ग्रामीण श्रमिक (जो कि दलित-वर्ग से सम्बन्ध रखते हैं) शहरों और कस्बों को चले जाते हैं। चूंकि उनके नगर जाने का प्रधान कारण कष्ट है, न कि महत्वाकांक्षा, अतः हम यह कह सकते हैं कि गाँवों से नगरों को प्रवास करने वाले सबसे कम कुशल और अत्यन्त निरुपाय ग्रामीण होते हैं। श्रम कमीशन के शब्दों में—

"प्रवास की प्रेरक शक्ति एक सिरे से आती है, अर्थात् गाँवों से। औद्योगिक श्रमिक नागरिक जीवन के आकर्षण से शहरों में नहीं जाता और न उसके प्रवास का कारण महत्वाकांक्षा ही होती है। शहर स्वयं उसके लिए कोई आकर्षण की वस्तु नहीं है और अपना गाँव छोड़ने के समय उसके मन में जीवन की आवश्यकताओं की प्राप्ति के अतिरिक्त और कोई भावना नहीं रहती। बहुत ही कम औद्योगिक-श्रमिक शहर में रहना चाहेंगे, यदि उन्हें गाँव में जीवनयापन के लिए पर्याप्त अन्न और वस्त्र मिल जाय। वे नगर की ओर आकर्षित नहीं होते, वरन् ढकेले जाते हैं।"

प्रवासी प्रवृत्ति के आर्थिक एवं सामाजिक परिणाम—(१) प्रवासी प्रवृत्ति के परिणामस्वरूप कारखानों में काम करने वालों के कितने ही वर्ग अपने को एकदम अपरिचित रीति-रिवाजों और परम्पराओं के मध्य पाते हैं। यह भी हो सकता है कि वहाँ भाषा भी दूसरी हो।

(२) पुरानी प्रथाओं और मान्यताओं के बन्धन ढीले पड़ जाते हैं, नवीन सम्बन्ध शीघ्रता से नहीं स्थापित हो पाते। फलतः जीवन अधिकाधिक वैयक्तिक हो जाता है।

(३) जलवायु के अत्यधिक परिवर्तन, दोषपूर्ण भोजन, स्थानाभाव के कारण अत्यधिक भीड़-भाड़ सफाई का अभाव तथा पारिवारिक जीवन से विच्छेद होने के बाद पुनः मिलने का प्रलोभन, इन सबका संयुक्त प्रभाव श्रमिक के स्वास्थ्य पर बहुत बुरा पड़ता है।

(४) कुछ दुर्व्यसनों के कारण श्रमिक के नैतिक जीवन का और भी पतन होता है। शराब और जुआ इन दुर्व्यसनो के उदाहरण है, जोकि गाँवों में अपेक्षाकृत अज्ञात हैं।

(५) चूंकि श्रमिक के मन में गाँव लौटने की इच्छा सदैव बनी रहती है, अतः वह अपनी नागरिक वृत्ति मे स्थायी रुचि उत्पन्न नही कर पाता। यही कारण है कि वह उच्च कोटि की प्राविधिक कुशलता नही प्राप्त कर पाता।

(६) उसके बार-बार गाँव लौटने तथा अन्य कारणों से मालिक और श्रमिक के बीच सम्पर्क की घनिष्टता नष्ट हो जाती है और उनमें प्रभावपूर्ण संगठन का भी अभाव हो जाता है।

(७) श्रमिक जब लम्बी अनुपस्थिति के बाद लौटता है तो यह निश्चित नही होता कि उसे काम मिलेगा ही। पुनः काम मिलने की कठिनाइयाँ उसे साहूकार, मजदूरो के ठेकेदार, शराब बेचने वाले आदि की दया पर आश्रित कर देती हैं।

क्या श्रमिकों का गाँवों से सम्पर्क उचित है ?—जैसा कि हम पहले संकेत कर चुके हैं, श्रमिकों का अभीष्ट गांव लौटना ही होता है। अधिकाश श्रमिक अपना परिवार गाँवो मे ही रखते है। शहर मे अपने पति के साथ आने वाली पत्नी भी प्रसव के समय प्रायः गाँव ही चली जाती है। शहर मे रहते हुए उनका सम्बन्ध गाँव से इसलिए भी नही टूट पाता कि वहाँ उनको अपने परिवार, किसी सम्बन्धी या अपने साहूकार को कुछ रकम भेजनी ही होती है।

श्रम आयोग के मतानुसार श्रमिकों का गाँवो से सम्पर्क लाभहीन नही है। शहरो की अपेक्षा गाँवों के अधिक स्वास्थ्यप्रद वातावरण मे पोषित होने के कारण ग्रामीण श्रमिकों का स्वास्थ्य अधिक उत्तम होता है। समय-समय पर गाँव जाने से खोई हुई मानसिक और शारीरिक शक्ति फिर से लौट आती है। बीमारी और वृत्तिहीनता के अवसर पर गाँव का घर एक शरण-स्थल का काम देता है। जिस प्रकार गाँवों के आर्थिक भार को नगर प्रवास हल्का कर देता है उसी प्रकार गाँव नगरो की वृत्तिहीनता के प्रति एक प्रकार की सुरक्षा प्रदान करते हैं। ग्रामीण और नागरिक जीवन का संयोग दोनों (नगरो और गाँवों) के लिए हितकर होता है। इससे ग्रामीण जीवन मे बाहरी दुनिया का थोडा सा ज्ञान आ जाता है तथा पुरानी जर्जर प्रथाओ की शृंखला को तोड़ने मे सहायता मिलती है। इसी प्रकार नागरिको को भारतीय जीवन की वास्तविकताओ का सूक्ष्म ज्ञान हो जाता है। अतः हमारा मत है कि इस समय गाँवो से सम्बन्ध की कड़ी को बनाये रखना लाभदायक है। हाँ, यह ध्यान रखना चाहिए कि वह सुनियमित और स्वास्थ्यप्रद हो।

(II) एकता का अभाव—भारतीय उद्योगो मे श्रमजीवी प्रायः बहुत दूर-दूर से काम करने आते हैं। ऐसे विरले ही औद्योगिक नगर हैं जिन्हे निकटवर्ती क्षेत्रो से ही समस्त श्रमिक प्राप्त हो जाते हैं। परिणामस्वरूप, मजदूरो का वर्ग एक ऐसा

विचित्र समुदाय बन गया है, जिसमें भिन्न-भिन्न धर्मों के भिन्न-भिन्न भाषा बोलने वाले, भिन्न-भिन्न रहन-सहन एवं रीति-रिवाज के लोग होते हैं। मजदूर वर्ग में इन अनेक भिन्नताओं के कारण संगठन नहीं है। संगठन तो दूर रहा, पारस्परिक मेल-जोल भी उनमें बहुत कम है।

(III) अनियमित उपस्थिति—जैसा हम ऊपर संकेत कर चुके हैं, भारतीय श्रमिक कारखानों के निकटवर्ती गाँवों अथवा राज्यों से काम करने के लिए नगरों में आते हैं, अतः अपने गाँवों के प्रति उनका आकर्षण बना रहता है। वे समय-समय पर गाँव जाते रहते हैं। कृषि क्षेत्रों से आने वाले श्रमिक कृषि मौसम में अथवा फसल पर, जब गाँवों में अधिक काम होता है, अपना काम छोड़ कर चले जाते हैं, इससे उनकी उपस्थिति कारखानों में अनियमित रहती है। निकटवर्ती गाँवों से आने वाले श्रमिक तो प्राय. प्रति मास ही अपने गाँव जाया करते हैं, जिससे कारखाने के काम में बड़ी बाधा पड़ती है।

(IV) अज्ञानता एवं शिक्षा का अभाव—भारत की सम्पूर्ण जन-संख्या में से केवल १७% व्यक्ति पढ़े-लिखे हैं। इन पढ़े-लिखे व्यक्तियों में से औद्योगिक श्रमिकों का भाग तो नाममात्र को ही होगा। सामान्य शिक्षा का अभाव होने के कारण श्रमजीवी पूर्ण उत्तरदायित्व के साथ अपने कर्तव्य का निष्पादन नहीं कर पाते। साथ ही, भारतीय श्रमजीवियों में जब सामान्य शिक्षा का अभाव है तो औद्योगिक शिक्षा का अभाव हो, यह कोई आश्चर्य की बात नहीं। यही कारण है कि हमारे श्रमजीवी लापरवाही के साथ यन्त्र-औजारों का उपयोग करते हैं तथा अपने काम का महत्त्व नहीं समझते।

(V) भारतीय श्रमिकों की पूर्ति उद्योगों को उनकी आवश्यकतानुसार नहीं मिलती—भारतीय श्रमिकों में कुशल श्रमिकों की अपेक्षा अकुशल श्रमिकों की संख्या अधिक है। इसका एकमात्र कारण यही है कि हमारी अधिकांश जन-संख्या कृषि उद्योग में लगी हुई है। सन् १९५१ की जन-संख्या के अनुसार, भारत की २५ करोड़ जन-संख्या कृषि पर प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से निर्भर है तथा शेष जन-संख्या संगठित उद्योग, खान उद्योग, यातायात, व्यापार एवं वाणिज्य पर निर्भर है।

(VI) रहन-सहन का निम्न स्तर—भारतीय श्रम-जीवियों के रहन-सहन का स्तर अत्यन्त गिरा हुआ है। इसका प्रधान कारण यह है कि उनको पारितोषण बहुत कम मिलता है। कोई भी व्यक्ति जब तक उसके पास अपनी समस्त आवश्यकताओं की सन्तुष्टि के हेतु साधन न हों, अपने रहन-सहन का स्तर ऊंचा नहीं कर सकता, अतः यह दोष श्रमिकों का नहीं, वरन् उन परिस्थितियों एवं वातावरण का है जिनके अन्तर्गत वे पले हैं और अपना जीवन व्यतीत करते हैं।

(VII) श्रमिकों की अक्षमता—भारतीय श्रमिकों की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि अन्य देशों की तुलना में हमारे श्रमिकों की कार्यक्षमता बहुत कम है। श्री

एलेक्जेन्डर मैकराबर्ट के अनुसार भारतीय श्रमिक की अपेक्षा एक अँग्रेज श्रमिक ४ गुना काम करता है, परन्तु भारतीय श्रमिक की अक्षमता का विचार करते हुए हमें यह भी स्मरण रखना चाहिये कि श्रमिकों की कुशलता निम्न बातों पर निर्भर करती है—जलवायु, भृत्ति-पद्धति, काम करने की परिस्थिति, रहन-सहन का स्तर तथा श्रम प्रबन्ध। इन घटकों के विवेचन से ही किसी देश के श्रमिकों की अक्षमता के विषय में समुचित निर्णय किया जा सकता है। काम करने की परिस्थिति, काम के घण्टे, यन्त्र-सामग्री, औद्योगिक शिक्षा एवं श्रम प्रबन्ध आदि कुछ ऐसी बातें हैं जो श्रमिकों के ऊपर निर्भर न रहते हुए उद्योगपतियों और निर्माताओं के उपर निर्भर रहती है तथा जिनकी समुचित व्यवस्था की पूर्ण जिम्मेदारी उनके ही उपर होती है, इसलिए यह कहना यथार्थ है कि किसी भी देश की 'औद्योगिक क्षमता' की जिम्मेदारी उद्योगपतियों पर निर्भर होती है। इस दृष्टि से यदि इस कसौटी पर भारतीय श्रमिकों की तुलना अन्य देशों के श्रमिकों के साथ कार्यक्षमता में की जाय तो यह स्पष्ट है कि भारतीय श्रमिकों की काम करने की परिस्थिति तथा उसको दी जाने वाली सुविधायें अन्य देशों की तुलना में नहीं के बराबर हैं, अत: श्रमिकों की अक्षमता उनका वैयक्तिक दोष न होते हुए उस परिस्थिति का दोष है जिसमे भारतीय श्रमिक रहता है एवं जिस परिस्थिति में उसे काम करना पड़ता है।

(VIII) भाग्यवादिता—भारतवासी (विशेषत: यहाँ का श्रमिक वर्ग) बड़े भाग्यवादी हैं। अपने जीवन के सुख-दुख को वे भाग्य की देन समझते है। "हुई है सोई जो राम रचि राखा" मे उनका इतना विश्वास है कि वे अपनी उन्नति के लिए पुरुषार्थ करने को प्रयत्नशील भी नहीं होते। भाग्य मे होगा तो मिल जायगा, ऐसा सोचकर वे हाथ पर हाथ रखकर बैठ जाते है।

भारतीय श्रमिकों की कुशलता (Efficiency of Industrial Labour)

क्या भारतीय श्रमिक वास्तव में अकुशल हैं?—भारतीय श्रमिकों की कुशलता उनकी लोकप्रिय विशेषता है। साधारणत: यही कहा जाता है कि भारतीय श्रमिक अदक्ष एवं अकुशल हैं। औद्योगिक कमीशन के सम्मुख सर अलेक्जेन्डर मैक राबर्ट (Sir Alaxander Mac Robert) ने अपनी साक्षी मे यह कहा कि एक अँग्रेज श्रमिक भारतीय श्रमिक से चौगुना कुशल होता है। सर क्लीमेंट सिम्पसन (Sir Clement Simpson) के अनुसार लङ्काशायर की सूती मिल का एक श्रमिक भारतीय सूती कपडे की मिल मे काम करने वाले २·६७ श्रमिको की योग्यता के बराबर है, किन्तु अन्तर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय की ओर से की गई जाँच इस धारणा को गलत सिद्ध कर देती है। इस जाँच से यह प्रकट है कि योरोप की तुलना मे हमारे श्रमिको की अक्षमता निर्विवाद सत्य नही है। कुछ उद्योगो मे तो वह अन्य देशों के श्रमिको के बराबर कुशल है। अन्य उद्योगो मे भी वह पूरी तरह अक्षम नही कहा जा सकता। यदि योरोपीय श्रमिक भारतीय श्रमिको की अपेक्षा अधिक उत्पादन करते हैं तो वे अधिक शिक्षा प्राप्त भी होते हैं, उनको अधिक भृत्ति एवं अन्य सुविधायें भी मिलती हैं। दूसरे शब्दो मे, भारतीय श्रमिक यदि अक्षम हैं तो अपने दोष

के कारण नहीं, अपितु उन परिस्थितियों के कारण है जिनमें वह रह रहा है। अक्षमता के प्रमुख कारण इस प्रकार हैं :—

भारतीय श्रम की अक्षमता के कारण एवं उन्हें दूर करने के उपाय

(१) प्रवासी प्रवृत्ति—इस प्रवृत्ति के कारण श्रमिक फसल के समय तथा अन्य विशेष उत्सवों पर अपने गाँव आते-जाते रहते हैं, जिससे भारत में अभी तक स्थायी श्रमिक वर्ग का उदय नहीं हो पाया है। इनकी इस प्रवृत्ति का यह परिणाम होता है कि वे प्रायः कारखानों से अनुपस्थित रहते हैं। इससे उत्पादन बड़ा अनिश्चित हो जाता है।

इस दोष को दूर करने एवं औद्योगिक केन्द्रों में श्रमिकों को स्थायी रूप से रहने का प्रोत्साहन देने के लिए शहरी जीवन का सुधार कर उसे अधिक आकर्षक बनाना चाहिए।

(२) शिक्षा सम्बन्धी सुविधाओं का अभाव—सामान्य ज्ञान का स्तर हमारे श्रमिकों में बहुत नीचा है। माता-पिता की अशिक्षा के कारण घर का वातावरण शिक्षाप्रद नहीं होता। इसके अतिरिक्त उपलब्ध शिक्षा-प्रणाली बहुत संकुचित है। अभी प्रारम्भिक शिक्षा भी सब जगह निःशुल्क तथा अनिवार्य नहीं हुई है। शिक्षा न मिलने से कट्टर, अन्धविश्वासी, भाग्यवादी और साहसहीन हो गये हैं। इन सब बातों से श्रमिक की अकुशलता बढ़ती है। सामान्य शिक्षा के अतिरिक्त हमारे श्रमजीवियों के लिए शिल्पिक प्रशिक्षण का सुअवसर भी नहीं मिलता। अन्य प्रगतिशील राष्ट्रों में, जहाँ श्रमिकों को पर्याप्त रूप से प्रशिक्षण दिया जाता है, श्रमिक जटिल से जटिल मशीन का प्रयोग सरलता से कर सकते हैं, किन्तु भारत में ऐसा नहीं है। हमारे श्रमिकों को मशीनों का उपयोग जानने तथा अन्य देशों में होने वाली श्रमिकों की गतिविधियों को समझने में अधिक समय लगता है। उनकी इस अज्ञानता के कारण उत्पादन-क्षमता गिर जाती है।

अन्य प्रगतिशील देशों की भाँति भारत में भी प्राथमिक शिक्षा तो कम से कम अनिवार्य होनी चाहिए। इसके अतिरिक्त अधिक से अधिक शिक्षण संस्थायें खोलकर शैल्पिक प्रशिक्षण की सुविधायें सुगम एवं सुलभ करनी चाहिए। सामान्य शिक्षा से श्रमिकों का मानसिक विकास होगा और औद्योगिक शिक्षा से व्यावसायिक अज्ञानता दूर होकर कार्यक्षमता बढ़ेगी।

(३) निर्धनता और निम्न जीवनस्तर—भारतीय श्रमिक की दरिद्रता सर्वविदित है। दरिद्रता के कारण उसे भर पेट भोजन एवं पर्याप्त वस्त्र उपलब्ध नहीं होते। ऐसी परिस्थितियों में दूध, फल आदि निपुणतावर्द्धक वस्तुओं की वह कल्पना भी कैसे कर सकता है? परिणामस्वरूप कार्यक्षमता गिर जाती है।

अस्तु श्रमिकों की निर्धनता को दूर करके उनका जीवन-स्तर ऊँचा करने के उपाय सोचना चाहिए। कुटीर-उद्योगों की प्रगति से यह समस्या काफी सीमा तक हल की जा सकती है।

(४) अल्प वेतन—इसका भी भारतीय श्रमिकों की कुशलता पर बुरा प्रभाव हुआ है। दरिद्रता के कारण वे भली प्रकार अपना पेट भी नही भर सकते। परिस्थितिवश उनकी आय का काफी भाग ऋण चुकाने एवं नशा करने मे निकल जाता है और जो शेष रहता है वह उनकी आवश्यकताओं के लिए पर्याप्त नही होता। अपना स्वास्थ्य बढ़ाना तो दूर रहा, पेट भरने को पर्याप्त रोटी भी उन्हे नही मिल पाती। इस प्रकार कार्यक्षमता दिनो-दिन कम होती जाती है।

इस दोष को दूर करने के लिये श्रमिकों को कम से कम इतनी मजदूरी अवश्य दी जाय, जिससे कि वे अपना तथा अपने परिवार का उचित भरण-पोषण कर सकें।

(५) शारीरिक दुर्बलता—निर्धनता एवं अल्प वेतन के कारण श्रमिकों का मानसिक एवं शारीरिक स्वास्थ्य खराब रहता है। अधिक समय तक वे निरन्तर कठिन परिश्रम करने के लिए अपने को असमर्थ पाते हैं। एक बार रोगी होने पर वे अच्छी तरह अपना इलाज भी नही करा सकते। भारत के अनेक क्षेत्रो मे मलेरिया आदि रोगों से अधिकांश श्रमिक पीड़ित रहते है। इससे उनकी कार्यक्षमता गिरती है और उत्पादन को भी क्षति पहुँचती है। सन् १९५१ मे बम्बई के एक कारखाने मे हिसाब लगा कर देखा गया था कि वहाँ २५·१% श्रमिको को जुकाम तथा फेफड़े सम्बन्धी रोग, २६·०% श्रमिको को दस्त, पेचिस व हैजा आदि, ५·३% को गठिया या बात सम्बन्धी रोग, ०·८% को मलेरिया, ७·८% को चोट (काम करते समय नही), ०·८% को छूत के तथा ३४·२% श्रमिको को विविध प्रकार के रोग हुए। निम्नलिखित तालिका मे हम कारखाने में इस प्रकार हुई समय की क्षति का अनुमान लगा सकते है। यही स्थिति प्रायः भारत के सभी कारखाने और उद्योग मे है[१] :—

रोग	प्रत्येक रोग के कारण के समय विनाश का प्रतिशत	प्रत्येक रोग के कारण अनुपातिक दिनो की क्षति
(१) फेफड़ा सम्बन्धी रोग	४०·१	६ २
(२) पाचन सम्बन्धी रोग	२९·९	६·०
(३) मलेरिया	५·४	७·८
(४) मूत्र सम्बन्धी रोग	०·२	६·०
(५) छूत के रोग	१·१	११·७
(६) चोट (काम पर नही)	२·७	६·४
(७) विविध	२३·४	७·४

१. देखिये इण्डियन लेबर ईयर बुक (१९५१-५२), पृष्ठ २५४।

इसके अतिरिक्त गांव के स्वतन्त्र और स्वच्छ वातावरण से आकर नगरों की गन्दी व संकीर्ण गलियों में रहने, नगरों की विचित्र परिस्थितियों में विभिन्न प्रकार की नैतिक बुराइयों का आखेट होने, मदिरा, जुआ और भ्रष्टाचार में फँस जाने तथा अन्य तत्सम्बन्धी विषमताओं के परिणामस्वरूप श्रमिकों की क्रियात्मक शक्तियों का पतन हो जाता है। शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य के इस प्रकार नष्ट हो जाने से उनकी कार्य-क्षमता पर बड़ा घातक प्रभाव पड़ता है।

इस दोष को दूर करने के लिए श्रमिक के लिए चिकित्सा सम्बन्धी सुविधाओं का प्रबन्ध करना चाहिए और मनोरन्जन के स्वस्थ साधन उपलब्ध कर उनका मद्य-पान एवं जुए का व्यसन छुड़ाना चाहिये।

(६) जलवायु—इसका भी कार्यक्षमता पर निर्णयात्मक प्रभाव पड़ता है। परिश्रम के कार्य के लिए शीतोष्ण जलवायु उपयुक्त होती है, लेकिन हमारे देश की जलवायु गर्म प्रदेश की है। गर्मी के मौसम में तिलमिलाती धूप में देर तक कड़ा परिश्रम करना सम्भव नहीं होता। बङ्गाल तथा तराई प्रदेशों की जलवायु तो बड़ी खराब है।

बिजली के पङ्खो एवं नमीकरण यन्त्रों (Humidifiers) आदि कृत्रिम साधनों की सहायता से यह कठिनाई भी कुछ सीमा तक दूर की जा सकती है।

(७) स्वतन्त्रता और आशा का प्रभाव—इसका भी श्रमिकों की कार्यक्षमता एक विशेष प्रभाव पड़ता है। कड़े निरीक्षण और आशा के अभाव में श्रमिक की कार्य क्षमता में कमी होना स्वाभाविक है।

इस दोष के निवारण के लिये प्रेरणात्मक भृति-पद्धति (*Progressive Wage System*) का अनुकरण करना चाहिये।

(८) ऋणग्रस्तता—अर्थशास्त्री डार्लिंग के अनुसार भारतीय श्रमिक ऋण में ही जन्मता है, ऋण में ही उनका पालन-पोषण होता है और ऋण में ही उसकी मृत्यु हो जाती है। ऋण प्रगति में बाधक होते हैं।

अस्तु, श्रमिकों को शीघ्र से शीघ्र ऋण मुक्त किया जाय और सहकारी आन्दोलन द्वारा उन्हें मितव्ययता का पाठ पढ़ाया जाय।

(९) काम के दीर्घ घन्टे—यद्यपि कारखाना अधिनियम द्वारा काम के घन्टों का अधिकतम निश्चिय कर दिया गया है, किन्तु भारत की गर्म जलवायु को देखते हुए वे अब भी अधिक हैं। वर्तमान समय में सदा चलने वाले कारखानों में ४८ घण्टों का सप्ताह और मौसमी कारखानों में ५४ घण्टों का एक सप्ताह होता है, लेकिन यह अधिनियम अनेक छोटे कारखानों में लागू नहीं होता। असंगठित उद्योगों, कुटीर उद्योगों तथा कृषि में श्रमिकों के काम करने के घन्टे दीर्घ, अनियमित तथा मालिक की इच्छा

पर निर्भर करते हैं। ऐसी परिस्थिति में भारतीय श्रमिकों की कार्यक्षमता कम होना स्वाभाविक है।

अतः उचित सन्नियम द्वारा इस दोष का निवारण किया जाय।

(१०) काम करने की दशाएं—भारतीय कारखानों की दशायें, जहाँ हमारे श्रमजीवी कार्य करते हैं, सन्तोषजनक नहीं हैं।

कार्य-कुशलता को स्थिर रखने के लिये स्वच्छ जल, वायु, विश्राम आदि की पूर्ण व्यवस्था होना आवश्यक है।

(११) भरती की दोषपूर्ण पद्धति—इसके कारण भी श्रमिकों की कार्यक्षमता गिरी हुई है। श्रमिकों की भरती जॉबर करते हैं, जो प्रत्येक भरती होने वाले से दस्तूरी लेते हैं। श्रमिकों की नियुक्ति, उन्नति एवं एक विभाग से दूसरे विभाग को स्थानान्तर सब कुछ इस जॉबर पर ही निर्भर है, अतः श्रमजीवियों को नाना प्रकार से उनकी सेवा-सुश्रूषा करते रहना पड़ता है। जॉबरों की आय नई नियुक्तियों पर ही निर्भर होती है, अतः वे तरह-तरह के बहाने बना कर पुरानों को निकालते और नयों को भरती करते रहते हैं। इसका दुष्परिणाम यह होता है कि श्रमिक की कार्यक्षमता कम हो जाती है और उद्योग का उत्पादन व्यय बढ़ जाता है।

इस दोष को दूर करने के लिए जॉबर पद्धति का अन्त करके श्रमिकों की भर्ती वैज्ञानिक आधार पर करनी चाहिये।

(१२) दोषपूर्ण प्रबन्ध—बहुत सीमा तक यह भी श्रमिकों की अक्षमता के लिए उत्तरदायी है। प्रबन्धकों का दुर्व्यवहार, काम का दोषपूर्ण विभाजन, घिसी हुई यन्त्र सामग्री आदि ऐसे दोष हैं, जिनमें कार्य में जी नहीं लगता।

अस्तु भारतीय श्रमिकों की कार्य-कुशलता बढ़ाने के लिए उत्तम मशीनों और अच्छे माल का प्रयोग आवश्यक है। साथ ही, यह भी आवश्यक है कि कुशल प्रबन्ध के निरीक्षण में उनसे कार्य लिया जाय।

भारतीय औद्योगिक श्रमिकों की गृह-समस्या

भोजन और वस्त्र के उपरान्त 'मकान' मनुष्य की तृतीय प्रमुख आवश्यकता है। यों तो हमारी ये तीनों ही समस्यायें गम्भीर हैं, किन्तु मकानों की समस्या, मुख्यतः औद्योगिक नगरों में, बड़ा विकराल रूप धारण करती जा रही है। नगरों की बढ़ती हुई जन-संख्या तथा गृह-निर्माण की मन्द गति इसके लिए विशेष रूप से उत्तरदायी है। प्रत्येक बड़े औद्योगिक नगर में एक इंच भी भूमि कहीं खाली नहीं और आबादी बहुत घनी है। नगर निवासियों में कारखानों में काम करने वाला श्रमिक वर्ग सबसे बुरे मकानों में रहता है। अनेक नगरों में तो उनके निवास स्थानों को 'मकान' की संज्ञा देना ही लज्जा की बात है। उन्हें मानव के योग्य नहीं कहा जा सकता। कानपुर में भारत के प्रधान मन्त्री पंडित जवाहरलाल नेहरू ने २ अक्टूबर सन् १९५२ को

श्रमिकों के निवास स्थान का निरीक्षण करते हुए उन्हें 'नरक-कुन्ड' कह डाला। पंडित नेहरू ने कहा कि भारतीय श्रमिकों की निवास समस्या बहुत ही जटिल है और उनके रहने के स्थान मैली-कुचैली गली (Slums) से अच्छे नही कहे जा सकते। अन्य औद्योगिक केन्द्रों में भी उनकी गंदी बस्तियाँ होती है, जहाँ सफाई का नाम नहीं, कोठरी में सूर्य का प्रकाश नहीं पहुँचता, फर्श में नमी रहती है, रोशनदान का पता नहीं तथा स्वच्छ वायु आ ही नहीं सकती। अधिकांश श्रमिक ऐसे गन्दे वातावरण में जीवन व्यतीत करते हैं। ऐसे मकानों में रहने वाले श्रमिकों से कार्यक्षमता की कैसे आशा की जा सकती है? ऐसे स्थानों को बम्बई में चॉल (Chawl), मद्रास में चेरी (Cherry), कलकत्ता में बस्ती (Basti) तथा कानपुर में अहाता (Ahatas) कहते है। अब हम श्रम-जाँच समिति की रिपोर्ट के आधार पर भारत के प्रमुख औद्योगिक नगरों की औद्योगिक बस्तियों का संक्षिप्त परिचय देंगे।

बम्बई में श्रमिकों की चॉलें (Chawls) अत्यन्त ही अस्वास्थ्यकर है, जहाँ एक ही कमरे में ६-७ श्रमजीवी रहते है। उन्हें न तो कौटुम्बिक वातावरण ही मिलता है और न स्वच्छ वायु तथा प्रकाश ही। श्री हर्स्ट (Hurst) ने इस प्रकार मजदूरों के बसाने को गोदाम में माल भरने के समान बताया है। बम्बई में ७०% से अधिक श्रमिक एक कमरे वाले मकान में रहते हैं, जबकि लन्दन के केवल ६% श्रमिक १ कमरे वाले मकान में निवास करते हैं। बम्बई के श्रमिकों में मकानों को पुनः किराये पर देने की प्रथा है, जिससे घनी आबादी की समस्या और भी बढ़ जाती है। किराये में बचत करने के विचार से ४ या ६ श्रमिक एक कोठरी किराये पर ले लेते हैं। उसी के अन्दर चारों कोनों में खाना पकाया जाता है। श्री शिवाराव ने लिखा है कि जब बम्बई में मजदूरों की बस्ती में एक लेडी डाक्टर मरीज देखने गई तो उसने देखा कि एक कमरे में ४ गृहस्थियाँ रहती थी, जिनके सदस्यों की संख्या २४ थी। चारों कोनो में चूल्हे बने हुए थे, सारा कमरा धुयें से काला हो रहा था। बम्बई के औद्योगिक श्रम-जीवियों के रहने की दशा के सम्बन्ध में श्रीयुत हर्स्ट का निम्न वर्णन बड़ा हृदय-स्पर्शी है—"रहने की दशायें यहाँ सबसे खराब हैं। एक सकरी गली में, जिसमें कि दो व्यक्ति एक साथ नहीं जा सकते, (लेखक के) घुसने के पश्चात् इतना अन्धेरा था कि हाथ से टटोलने पर कमरे का दरवाजा मिला। उस कमरे में सूर्य का लेशमात्र भी प्रकाश न था। ऐसी दशा दिन के १२ बजे थी। एक दियासलाई जलाने के पश्चात् ज्ञात हुआ कि ऐसे कमरे में भी अनेक श्रमिक रहते है।" श्रम के शाही कमीशन ने तो बम्बई की चालों के सम्बन्ध में यहाँ तक लिखा है कि इनको पूर्णतया तोड़ने के अतिरिक्त इनमें सुधार के लिए लेशमात्र भी गुन्जायश नहीं है।

अहमदाबाद के श्रम-निवास स्थान भी अधिक संतोषजनक नहीं कहे जा सकते। यहाँ की नगरपालिका ने हरिजनों तथा अन्य श्रमिकों के लिए कुछ मकानों का निर्माण किया है। इसके अतिरिक्त अहमदाबाद मिल्स हाउसिंग कम्पनी एवं सूती वस्त्र मिल श्रम-संघ की ओर से भी अच्छी व्यवस्था की गई है। श्रम-संघ द्वारा निर्मित कॉलोनी

में रहने वाले श्रमजीवियो से १०) मासिक किराया लिया जाता है और २० वर्ष के उपरान्त जिस मकान मे वे रहते हैं वह उनका हो जाता है। प्रत्येक मकान मे दो कमरे एक रसोईघर तथा एक बरामदा है। अहमदाबाद में श्रमिकों की गृहनिर्माण सहकारी समितियाँ भी हैं।

कलकत्ते की दशा भी बम्बई से अच्छी नही है। यहाँ बम्बई की अपेक्षा कम दाम पर भूमि मिल जाती है। यहाँ मजदूरो के घर झोंपडियों की कतारें हैं, जिन्हें 'बस्ती' कहा जाता है। ये झोपड़े मिल-मालिको द्वारा नहीं बनाए गए है, वरन् सीरदार (Sirdar) एवं कुछ मकान मालिको ने बनवाए हैं। कलकत्ता नगर निगम की रिपोर्ट से यह स्पष्ट है कि इन झोपड़ियों का निर्माण बिना किसी योजना के हुआ है। प्रायः सभी निवास-स्थान कच्चे है और श्री कैसे (Casey) के शब्दों मे "कोई भी मानव वहाँ रहना पसन्द न करेगा।" चारो ओर गन्दगी का साम्राज्य है। मलेरिया और तपेदिक का काफी जोर रहता है। घरों में न नल है न सण्डास। पूरे मुहल्ले के लिए एक या दो नल तथा एक सण्डास होगा, जिस पर बिचारे श्रमजीवी लाइन लगाकर खड़े रहते हैं। छोटी-छोटी बातो पर जैसे—पानी के लिए, नित्य झगड़े-फसाद होते रहते हैं। सडकें और गलियाँ खराब, गन्दी, पतली तथा प्रकाशहीन है, जिन पर रात्रि मे चलना खतरनाक है। गत कुछ वर्षों में सर्वश्री बिड़ला जी के सद्प्रयत्नों के परिणामस्वरूप जूट मिल कर्मचारियो के लिये अच्छे घरों की व्यवस्था की गई है, जिनमे लगभग ५०% जूट-मिल-श्रमिक रहते हैं, किन्तु शेष 'बस्तियों' में ही निवास करते हैं, जिनकी दशा अत्यन्त दयनीय है।

कानपुर उत्तरी भारत का 'मैनचेस्टर' कहलाता है, अतएव यहाँ श्रमिको के निवास के लिए समुचित व्यवस्था होना नितान्त आवश्यक है। यद्यपि कानपुर में नगर-पालिका, इम्प्रूवमेन्ट ट्रस्ट एवं कुछ सेवायोजकों ने श्रमिकों के निवास के लिए आदर्श व्यवस्था की है, किन्तु फिर भी आज यहाँ 'अहाते' तथा 'बस्तियाँ' दृष्टिगोचर होती हैं, जिनकी दशा अत्यन्त शोचनीय है। उत्तर प्रदेश की सरकार ने प्रत्यक्ष रूप से गृह समस्या के निवारणार्थ यहाँ कुछ भी नही किया है। हाँ, सन् १९४३-४४ मे राज्य सरकार ने २,४०० परिवारो के लिए क्वार्टर बनवाने के हेतु इम्प्रूवमेन्ट ट्रस्ट को २०३ लाख रुपये का ऋण दिया। तब से प्रति वर्ष यह संस्था कुछ न कुछ मकान बनवाती रही है, जिनका किराया ४) प्रति माह है। सन् १९३८ की कानपुर श्रम जाँच समिति की रिपोर्ट से पता चलता है कि यहाँ सेवायोजकों की ओर से केवल ३,००० मकान बनाए गए, जिनमें १०,००० श्रमिक रहते हैं। सन् १९३८ से सन् १९४३ तक स्थिति मे कोई विशेष परिवर्तन नही हुआ है। सन् १९४३ मे यहाँ श्रमिको की संख्या १,०३,००० थी। इसमे से केवल १०% श्रमजीवियों के रहने के लिये सेवायोजको ने व्यवस्था की। यहाँ के सेवायोजको में से ब्रिटिश इण्डिया कॉरपोरेशन का नाम विशेष उल्लेखनीय है, जिसने मैक रोबर्टगन्ज तथा अलेनगन्ज मे १,६६० श्रम-क्वार्टर्स बनवाए। इन क्वार्टरों में जल, प्रकाश, स्वच्छ वायु आदि की तो सुव्यवस्था

हैं ही, इसके अतिरिक्त प्रत्येक कॉलौनी के लिये एक शिक्षण संस्था एवं डिस्पैन्सरी भी है। सर्व श्री बैग सूदरलैण्ड एण्ड कम्पनी लि० के प्रबन्ध के अन्तर्गत एलगिन मिल्स ने भी अपने श्रमजीवियो के लिये सुन्दर मकानो का निर्माण करवाया है। एलगिन मिल्स के क्वार्टरो मे अन्य सुविधाओ के साथ-साथ बिजली की रोशनी का भी प्रबन्ध है। इसी प्रकार सर्वश्री जुग्गीमल कमलापति की ओर से भी उनके श्रमिको के निवास के लिए एक पृथक कॉलौनी का निर्माण किया गया है, जिसमे प्राय: सभी सुविधायें उपलब्ध है। कानपुर की नगरपालिका ने भी निम्न कोटि के श्रमिको के लिये (जैसे भंगी एवं पार्क तथा सार्वजनिक उद्यानो मे काम करने वाले कर्मचारी) निवासो की अच्छी व्यवस्था की है।

इतना होते हुए भी कानपुर की श्रम-बस्तियो एवं अहातो मे सहस्त्रो श्रमिक रहते है। श्रम के शाही कमीशन ने अहातो का वर्णन इस प्रकार किया है—"प्राय: प्रत्येक मकान एक-एक कमरे का है, जिनकी लम्बाई-चौडाई ८ फीट × १० फीट है। किसी भी कमरे के आगे बरामदा नही है और प्रत्येक कमरे मे ३-४ परिवार रहते है। फर्श कच्चा है तथा नमी रहती है। कही भी स्वच्छ वायु, प्रकाश आदि का प्रबन्ध नही है।" पण्डित नेहरू ने तो इन अहातो को 'नरक कुण्ड' की संज्ञा दी है।

टाटानगर मे सर्वश्री टाटा की ओर से लोहे एवं इस्पात उद्योगो मे काम करने वाले श्रम-जीवियो के लिये लगभग ८,५०० मकान बनवाये गये है। प्रत्येक मकान मे दो कमरे, एक रसोईघर तथा एक बरामदा है। इसके अतिरिक्त स्नानागार एवं फ्लस-सन्डास भी हैं। सभी मकान पक्के हैं तथा कुछ मे बिजली के पंखे भी हैं। यह सब व्यवस्था दक्ष कारीगरो के लिये है, अकुशल श्रमजीवियों के निवास-स्थान बड़े गन्दे एवं असन्तोषजनक हैं।

मद्रास मे भी श्रमिको के निवास स्थान बडे असन्तोषजनक हैं। कुछ मिल मालिकों ने श्रमिको के लिये क्वार्टर बनवाये हैं, परन्तु उनमें अनेक श्रमिक रहना पसन्द नही करते, क्योकि उनके विरुद्ध खुफिया जाँच होती रहती है और यदि वे कभी हड़ताल मे भाग लेंगे तो क्वार्टर से निकाल दिये जायेंगे। ऐसे वातावरण मे वे रहना पसन्द नही करते।

शोलापुर मे श्रमिकों की गृह-व्यवस्था सन्तोषजनक है। इसी प्रकार मदुरा मे भी श्रमिकों के लिये सुन्दर मकान बने हैं, जिनमे प्राय: सभी वर्तमान सुविधायें उपलब्ध हैं। नागपुर की एम्प्रैस मिल तथा बंगलौर की सूती, ऊनी तथा रेशमी वस्त्र मिल के श्रमजीवियों के लिए बडी सुन्दर गृह-व्यवस्था है। रानीगंज तथा झरिया की कोयले की खानों में काम करने वाले श्रमिको के लिए जो मकान बनवाये गये हैं वे Mines Board of Health के आदेशानुसार बनवाये गये हैं, अत: सन्तोषजनक कहे जा सकते हैं। आसाम के चाय के बगीचो मे काम करने वाले श्रमिको की गृह-दशा अत्यन्त शोचनीय है। वहाँ कही भी स्वच्छता नही तथा मलेरिया का बड़ा बोलबाला है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि किंचित क्षेत्रों को छोड़कर शेष सभी नगरों मे औद्योगिक श्रमिकों की गृह-समस्या अत्यन्त जटिल है। श्रमिको के निवास स्थानों को देखकर कभी-कभी मसानी (Masani) के शब्द स्मरण हो आते हैं—"विश्व की रचना ईश्वर ने की है, नगरों को मानव ने और श्रम-बस्तियो की शैतान ने।"

बुरी गृह-व्यवस्था के दुष्परिणाम—अच्छे घरों का अर्थ है गृह-जीवन की सम्भावना, सुख और स्वास्थ्य तथा बुरे घरों का अर्थ है, गन्दगी, शराबखोरी, बीमारी, आचारहीनता, व्यभिचार और अपराध। इनके लिए अस्पताल, जेल और पागलखानों की आवश्यकता होती है, जहाँ समाज के भ्रष्ट एवं पतित लोगों को छिपाया जाता है, जो स्वयं समाज की लापरवाही के ही परिणाम हैं। अनुपयुक्त एवं सुविधाहीन घरो के कारण श्रमिकों का घरेलू जीवन नीरस एवं आनन्दरहित हो जाता है। गन्दगी के कारण मलेरिया और तपेदिक जैसी भयानक बीमारियों का जोर रहता है, श्रमिको का स्वास्थ्य बिगड़ जाता है, उनके मस्तिष्क संकुचित हो जाते हैं तथा मानसिक विकास का कोई अवसर नहीं रहता। अपूर्ण और गन्दे मकान औद्योगिक अशान्ति के भी कारण हैं। एक सबसे बड़ी बुराई अधिक संख्या मे शिशु-मृत्यु है, जो बम्बई की गन्दी बस्तियों मे पाई जाती है। मृत्यु संख्या निवास के कमरो के विपरीत अनुपात मे है। उदाहरण के लिए सन् १९३६ में एक कमरे वाले निवास-स्थानों मे मृत्यु संख्या ७८·३% थी। सबसे गन्दे स्थानों मे मृत्यु दर २९८ प्रति हजार थी, जबकि साधारण दर २०० से २५० प्रति हजार ही थी। अन्त मे चॉल के जीवन की भयंकर दशायें तथा गोपनीयता के अभाव के कारण लोग अपने कुटुम्ब को नहीं ला पाते, जिससे श्रम की स्थिरता तथा कार्यक्षमता पर कुप्रभाव पड़ता है। एकाकी जीवन व्यतीत होने के कारण उनमे वैश्यागमन जैसी बुरी आदतें पैदा हो जाती हैं। जो श्रमिक परिवार सहित रहते है वे भी एक कमरे ही के कारण गोपनीयता नहीं रख सकते। एक ही कमरे में पुरुष-स्त्री के साथ रहने के कारण संयम से जीवन व्यतीत नहीं हो पाता। ऐसी परिस्थितियों मे महिला श्रमिकों के नैतिक पतन की बड़ी आशंका रहती है। डा० राधाकमल मुकर्जी के शब्दों मे, "भारतीय औद्योगिक केन्द्रों की श्रम बस्तियो की दशा इतनी भयंकर है कि वहाँ मानवता का विध्वंस होता है, महिलाओं के सतीत्व का नाश होता है एवं देश के भावी आधार-स्तम्भ—शिशुओं का गला घुट जाता है।" अतः श्रम जाँच समिति ने सिफारिश की है कि शिक्षा और औषधि सम्बन्धी सहायता की भाँति सरकार को औद्योगिक आवास का भी उत्तरदायित्व संभालना चाहिये।

गृह समस्या को हल करने के लिए किये गये प्रयत्न

(१) सुधार प्रन्यासों व पोर्ट ट्रस्टों के प्रयत्न—यद्यपि भारत मे 'घर' सम्बन्धी सुविधायें न्यून हैं और इस सम्बन्ध मे दशा बड़ी शोचनीय है, किन्तु ऐसी भी संस्थायें तथा सेवायोजक हैं, जिन्होंने बड़ी सुन्दर व्यवस्थायें की हैं। बम्बई मे गृह समस्या के निवारणार्थ 'सुधार प्रन्यास' (Improvement Trust) की स्थापना हुई। इसका काम नई गलियों का निर्माण, घने क्षेत्रों का विस्तार, समुद्र से भूमि को निकालना,

जिससे प्रसार कार्य में सुविधा हो तथा गरीबों के लिये स्वच्छ मकानों का निर्माण करना था, किन्तु ट्रस्ट की सीमित शक्ति, नगर-निगम के सहयोग की कमी तथा भूमि-पतियों के विरोध के कारण इसे कुछ विशेष सफलता नहीं मिली। फिर भी ट्रस्ट ने कुछ सीमा तक प्रशंसनीय कार्य किया। सन् १९२० तक नगरपालिका ने भी अपने कर्मचारियों के लिये ३,६०० मकान बनवाये तथा २,२०० के लिये स्वीकृति दी। पोर्ट ट्रस्ट ने ४,००० व्यक्तियों के लिए मकान बनवाये। इधर नगर की जनसंख्या बड़ी तेजी से बढ़ रही थी, किन्तु सेवायोजकों ने अपने श्रमजीवियों के रहने के लिये प्रबन्ध नहीं किया। सन् १९१४-१८ के युद्ध के उपरान्त बम्बई सरकार द्वारा इस समस्या को सुलझाने के लिए सुविस्तृत योजना तैयार की गई। इसके लिये ६ करोड़ रुपये के विशाल ऋण तथा बम्बई आने वाली सभी कपास पर १) प्रति गाँठ की दर से नगर कर लगाकर आवश्यक धन एकत्रित किया गया, किन्तु इस प्रकार निर्मित चालें (मुख्यत: 'वोरली' की चालें) दस वर्ष तक खाली पड़ी रहीं। इनमें रहने के लिए श्रमिकों के आकर्षित न होने के निम्न कारण थे :—वहाँ तक पहुँचने की कठिनाई, बाजार सम्बन्धी सुविधाओं का अभाव, उनका सीमेंट से बना होना—जिसके कारण वे गर्मी में अधिक गर्म तथा जाड़े में अत्यन्त सर्द रहती हैं, किराए की ऊँची दर तथा प्रकाश सम्बन्धी व्यवस्था और पुलिस सुरक्षा का अभाव। इन दोषों को दूर करने के लिए कुछ प्रयत्न किए गये हैं। नगर निगम तथा पोर्ट ट्रस्ट भी अपनी विकास योजनायें कार्यान्वित करने में प्रयत्नशील हैं। मई सन् १९४७ में बम्बई सरकार ने वोरली पर भवन निर्माण योजना प्रारम्भ की, जिसमें काम करने वाले एक व्यक्ति तथा परिवार दोनों के रहने के लिये मकान बनवाए गये हैं। अब बम्बई में एक कमरे वाले मकान न रहेंगे।

(२) मिल-मालिकों द्वारा किए गए प्रयत्न—जहाँ तक मिल-मालिकों का प्रश्न है, कुछ मिलों ने जैसे—जैकब सॉसन मिल ने, अपने श्रमजीवियों के लिए मकान देने की व्यवस्था की है। उचित दर पर कारखानों के समीप स्थान मिलने की कठिनाई, इस बात की सुरक्षा का अभाव कि मकान मिलने पर श्रमिक मकान देने वाली मिल में ही काम करेंगे तथा स्वयं कर्मचारियों की उन मकानों में रहने की अनिच्छा—इन सब कारणों से काम के प्रसार में काफी शिथिलता आ गई है। कर्मचारी डरते हैं कि उनकी स्वतन्त्रता में बाधा पड़ेगी तथा हड़ताल के समय वे निकाल दिये जायेंगे। वे स्वच्छता और अनुशासन के नियमों को भी पसन्द नहीं करते, क्योंकि वे उनका महत्व ही नहीं समझते। कानपुर, नागपुर, ग्वालियर, अहमदाबाद, मद्रास आदि नगरों में मिल-मालिकों ने श्रमजीवियों के हितों पर अधिक ध्यान दिया है। इस सम्बन्ध में एम्प्रेस मिल्स, नागपुर, जीवाजीराव कॉटन मिल्स ग्वालियर तथा टाटा के जमशेदपुर लोहे और इस्पात के कारखानों के प्रबन्धकों द्वारा किये गये आवास सम्बन्धी प्रयत्न प्रशंसनीय हैं। दक्षिणी भारत में सहकारी-गृह-निर्माण समितियों ने भी इस दिशा में सराहनीय प्रयास किया।

(३) औद्योगिक श्रमिकों के आवास के लिए राजकीय प्रयत्न—बहुत अधिक समय तक भारत सरकार ने गृह-समस्या की ओर लेशमात्र भी ध्यान नही दिया। परन्तु स्वतन्त्रता के उपरान्त, राष्ट्रीय सरकार के लिए अधिक समय तक मौन रखना सम्भव न था। सन् १९४८ की औद्योगिक नीति सम्बन्धी घोषणा मे, औद्योगिक श्रमजीवियो के लिये गृह-निर्माण पर प्रथम बार बल दिया गया। अप्रैल सन् १९४८ मे सरकार ने यह घोषित किया कि वह ३०० करोड़ रुपये की लागत पर अगले १० वर्षों मे १० लाख घर बनवायेगी जिनका वितरण इस प्रकार होगा—कारखानों के लिए ७½ लाख, बागानो के लिए २ लाख और जहाजी कम्पनियो मे काम करने वाले श्रमिको के लिए ½ लाख। यद्यपि राज्य सरकारों ने इस योजना का स्वागत किया, परन्तु धनाभाव के कारण कोई प्रगति न हो सकी। सन् १९४९ मे एक नई योजना—औद्योगिक आवास योजना—घोषित की गई, जिसके अन्तर्गत विभिन्न राज्यो को ऋण दिए गये।

पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत गृह-निर्माण की प्रगति

प्रथम पंचवर्षीय योजना की अवधि मे एक राष्ट्रीय आवास कार्यक्रम के विकास की प्रारम्भिक अवस्थाओ के सगठन का प्रयास किया गया। दो नगर आवास योजनायें 'आर्थिक सहायता प्राप्त औद्योगिक आवास योजना' (Subsidised Industrial Housing Scheme) और 'कम आय वाले वर्ग के आवास की योजना' (Low Income Group Housing Scheme)—१,२०,००० आवास इकाइयो के निर्माणार्थ ३८·५ करोड रु० के व्यय से आरम्भ की गईं। इसके साथ-साथ जनसख्या के विशेष वर्गों जैसे विस्थापित व्यक्तियो एवं सरकारी नौकरो के लिये गृह योजनाओ पर भी काम जारी रहा। यह अनुमान लगाया गया है कि सार्वजनिक संस्थाओ द्वारा पहली योजना अवधि से ७,४२,००० घर बनाए गये।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना की अवधि मे १२९ करोड़ रु० विभिन्न गृह-योजनाओ के लिए स्वीकार किये गये थे। योजना को सन् १९५८ मे संशोधित करने पर यह आयोजन घटाकर ८४ करोड़ रहने दिया गया। किन्तु यह घटोत्तरी वास्तविक व्यय की सीमा को लागू होनी थी, अधिकतम सीमा को नही।

(१) आर्थिक सहायता प्राप्त औद्योगिक आवास योजना—राज्य सरकारों, नियोक्ताओ और श्रमिको के प्रतिनिधियो से परामर्श करने के बाद भारत सरकार ने सन् १९५२ मे 'आर्थिक सहायता प्राप्त औद्योगिक आवास योजना' को अन्तिम रूप दिया।

इस योजना के अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार आरम्भ मे राज्य सरकार को सम्पूर्ण लागत देगी, जिसका ५० प्रतिशत आर्थिक सहायता के रूप में होगा तथा शेष ५०% ऋण के रूप मे होगा, जिसे २५ वर्ष मे वापिस करना होगा। श्रमिक के आवास की स्वीकृत योजनाओ के नियोक्ताओ को लागत का २५% आर्थिक सहायता तथा ३७½%

ऋण के रूप में देने की व्यवस्था है। यह योजना सर्वप्रथम औद्योगिक श्रमिकों के लिये स्वीकृत हुई थी, किन्तु अब सन् १९५२ के खान अधिनियम के अनुसार कोयला तथा अभ्रक खानों के श्रमिकों को छोड़कर शेष कुछ अन्य खान मजदूरों के लिए भी लागू होती है। इस योजना के अन्तर्गत ऋण तथा अनुदान केन्द्रीय सरकार के द्वारा, राज्य सरकारों, वैधानिक गृह बोर्डों, औद्योगिक नियोक्ताओं तथा रजिस्टर्ड सहकारी संस्थाओं को दिये जाते हैं। अक्टूबर सन् १९६० के अन्त तक राज्य सरकारों, कारखाना मालिकों तथा मजदूरों की सहकारी संस्थाओं को ऋण के रूप २२·९५ करोड़ रुपये तथा सहायता के रूप मे २०·८३ करोड़ रुपये दिये गये और १,३६,४६६ मकानों के लिये स्वीकृति दी गई। दिसम्बर सन् १९६० के अन्त तक ९८,००० मकान बनाये जा चुके थे।

(२) **कम आय वाले वर्ग के लिए गृह योजना—सन् १९५४ में कम आय वालों के लिए सरकारी आर्थिक व्यवस्था की गई।** इस व्यवस्था के अन्तर्गत लोगों को एक लम्बी अवधि के लिए बहुत कम ब्याज पर ऋण देने का प्रबन्ध किया गया। केवल उन्हीं लोगों को इस योजना के अन्तर्गत ऋण मिल सकता है जिनकी वार्षिक आय ६,०००) से अधिक न हो। इस योजना को कार्यान्वित करने के लिए केन्द्रीय सरकार राज्य सरकारों को दीर्घकालीन ब्याज रहित ऋण देती है। अधिक से अधिक ५ वर्ष की अवधि के अल्पकालीन ऋण भी केन्द्रीय सरकार द्वारा राज्य सरकारों को भूमि का अधिग्रहण एवं विकास करने तथा इसके बाद उसको प्लाटों के रूप में अलाभ आधार पर आय वाले व्यक्तियों को बेचने के लिये उपलब्ध करती है। ३१ मार्च सन् १९६१ तक राज्य सरकारों ने इस योजना के अन्तर्गत ४२·७६ करोड़ रु० केन्द्रीय सरकार से लिया। इस अवधि में ८२,८४८ घर बनाने के लिये स्वीकृति दी गई, ५०,९५६ घर बनकर तैयार हो गये तथा २०,०६४ घर बनने की प्रगति में थे।

(३) **बागान मजदूर आवास योजना—सन् १९५१ के 'बागान मजदूर अधिनियम'** ने प्रत्येक बागान-मालिक के लिये अपने श्रमिकों के आवास हेतु व्यवस्था करना अनिवार्य कर दिया है। अप्रैल सन् १९५६ में एक योजना भी उनकी सहायता के के लिये (विशेषत. छोटे बागान मालिकों के लिए) बनाई गई। इस योजना के अन्तर्गत बागान मालिकों को राज्य सरकारों के माध्यम से मकानों की लागत के ८०% तक ब्याज मुक्त ऋणों के रूप में आर्थिक सहायता देना तय हुआ। सन् १९६० के अन्त तक राज्य सरकारों ने ६८३ घरों के निर्माण के लिए १२·५७ लाख रु० स्वीकार किये। इनमें से २८८ घर बन गये हैं।

ऋणों के सम्बन्ध में राज्य सरकारों द्वारा निर्धारित प्रतिभूति देने में असमर्थ होने के कारण बागान मालिक योजना का लाभ उठाने में कठिनाइयाँ अनुभव कर रहे हैं। अतः प्रत्येक राज्य सरकार द्वारा एक पूल गारण्टी फण्ड की स्थापना करने, के सम्बन्ध में प्रस्ताव रखे गए हैं। 'पूल गारण्टी फण्ड' (Pool Guarantee Fund)

का उद्देश्य राज्य सरकारों को बुरे ऋणों के कारण (जो कि प्रतिभूति सम्बन्धी नियम ढीला करने के फलस्वरूप डूब जायें) होने वाली हानि से बचाना है। यह फन्ड उस धन से बनाया जायेगा जो कि ऋणों पर ½% वार्षिक ब्याज अधिक लगाकर प्राप्त होगा। यदि फण्ड की सीमा से अधिक हानि हो, तो वह भारत सरकार, राज्य सरकार एवं कमोडिटी के बोर्ड के बीच बराबर-बराबर बँट जायेगी।

(४) गन्दी बस्तियों के सुधार की योजना—गन्दी बस्तियों के सुधार की योजना (Slum Clearance Scheme) मई सन् १९५६ में अमल में लाई गई। इस योजना के अन्तर्गत राज्य सरकारों को एवं इनके द्वारा म्युनिस्पल एवं स्थानीय संस्थाओं को गन्दी बस्तियों में रहने वाले परिवारों को पुनः आवास के लिए, जिनकी आय बम्बई व कलकत्ता में २५० रु० प्रति माह एवं अन्य स्थानों में १७५ रु० प्रति माह से अधिक नहीं है, वित्तीय सहायता देने का प्रबन्ध है। अभी यह योजना मुख्यतः बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, दिल्ली, कानपुर और अहमदाबाद में, जहाँ कि गृह दशायें बुरी है और अविलम्ब सुधार चाहती हैं, सीमित है। यदि आवश्यकता हो, अन्य क्षेत्र भी केन्द्रीय सहायता प्राप्त कर सकते हैं, दिसम्बर सन् १९६० तक राज्य सरकारों द्वारा बनाई गई १७० योजनाओं पर स्वीकृति मिल चुकी थी, जिनके अन्तर्गत १९·०७ करोड़ रु० के व्यय से ४८,८४१ गृह-इकाइयाँ (*Housing Units*) बनाने का प्रस्ताव था। सन् १९६० के अन्त तक १०,०९५ गृह-इकाइयों का निर्माण हो चुका था तथा ७,७०१ गृह-इकाइयों पर काम जारी था। ४,९२७ घर एवं १०५ दुकानें सन् १९६० तक बन कर तैयार हो गईं।

श्रम बस्तियों में मकानों के निर्माणार्थ योजना टोली सन् १९५८ के सुझाव—गन्दी बस्तियों में सुधार कर मकान बनाने के विषय में राष्ट्रीय विकास-परिषद की योजना समिति ने जो योजना टोली बनाई थी उसके सुझाव निम्न हैं :—

(१) गन्दी बस्तियों की सफाई के लिए सबसे अच्छा तरीका यही है कि इस काम के लिये कानून द्वारा निगम मण्डल बनाए जायें, जो स्वायत्त हों और जिनके ऊपर कार्यक्रमों को चलाने का उत्तरदायित्व हो। वे अपने क्षेत्रों में योजनाओं के लिए नीति निर्धारित करें।

(२) आयोजन में मकान बनाने के लिए जो राशि रखी गई है वह केन्द्रीय मकान निगम को दे दी जाय, जिसने वह उसे राज्यों के मकान निगमों में बाँट सके। केन्द्रीय निगम, राष्ट्रीय भवन निर्माण संगठन और केन्द्रीय भवन निर्माण अनुसन्धान-शाला से निकट सम्पर्क रखें।

(३) गन्दी बस्तियों की बाढ़ को रोकने के लिये गाँवों से नगरों की ओर जाने की प्रवृत्ति को रोका जाय तथा केन्द्रीय सरकार नगर में नये उद्योग खोलने या किसी उद्योग को बढ़ाने की अनुमति तभी दे, जब स्थानीय संस्थाएँ भी इसे स्वीकार कर लें।

(४) जहाँ आबादी बहुत घनी है, वहाँ अधिक रोजगार दिए जायें। प्रत्येक नगर में गन्दी बस्तियों की सफाई के लिए वृहत योजना बनाई जाय।

(५) मकानों के लिए न्यूनतम स्तर स्थापित किया जाय और गन्दी बस्तियों में सभी मकानों की जाँच की जाय।

(६) मकानों के निर्माण का व्यय कम होना चाहिए।

(५) ग्राम आवास योजना (Village Housing Projects Scheme)—यह योजना सन् १९५७ में प्रारम्भ की गई। इसके अन्तर्गत सामुदायिक विकास खण्डों में लगभग ५,००० चुने हुए गाँवों में द्वितीय योजनाविधि के अन्दर हाउसिंग प्रोजेक्ट स्थापित करने थे। यह योजना सहायता-प्राप्त आत्म-सहायता के सिद्धान्त (Principle of aided self help) पर बनाई गई है। निर्माण लागत को ⅔ या २,००० रु० (दोनों में जो भी कम हो) की वित्तीय सहायता ऋण के रूप में दी जाती है। राज्य सरकारों द्वारा स्थापित Rural Housing Cells तथा खण्ड विकास अधिकारियों द्वारा टेक्नीकल सहायता निशुल्क देने की व्यवस्था है। Rural Housing Cells लगभग सभी राज्यों में (गुजरात व जम्मू-काश्मीर को छोड़ कर) बन गये हैं। लगभग ३,७०० गाँव चुने गये, जिसमें से १,६०० गाँवों का सर्वे व योजनाकरण दिसम्बर सन् १९६० तक पूर्ण हो गया है। राज्य सरकारों ने १५,२०० घरों के निर्माण के लिये २१८ लाख रु० से अधिक के ऋण स्वीकृत किये हैं। इसमें से १२८ लाख रु० वास्तव में दिया जा चुका है, ३,००० घर बन कर तैयार हो गये हैं तथा ८,००० घर बनने की प्रगति में हैं।

(६) भूमि अधिग्रहण एवं विकास योजना—अक्टूबर सन् १९५९ में प्रचलित की गई यह योजना बड़े पैमाने पर भूमि का अधिग्रहण और विकास करके प्लाट बनाकर उचित कीमतों पर गृह-निर्माताओं को (विशेषतः कम आय वाले वर्ग को) बेचने में राज्य सरकारों को विशेष सुविधा हेतु उन्हें ऋण देने के लिए बनाई गई है। इस योजना के अन्य उद्देश्य भी हैं, जैसे भूमि के मूल्यों में स्थायित्व लाना, नगर विकास का विवेकीकरण करना और आत्म-निर्भर मिश्रित उपनिवेशों को प्रोत्साहन देना।

इस योजना के अन्तर्गत १५ करोड़ रु० की सीमा तक सहायता का वायदा किया गया, जबकि वास्तविक व्यय द्वितीय योजना अवधि में २·९० करोड़ रु० तक सीमित रखा गया। इसमें से राज्य सरकारों ने ३८ लाख रु० सन् १९५९-६० में तथा १·८३ करोड रु० १९६०–६१ में लिया है।

मध्यवर्गीय जनता के लिए आवास योजना बनाई गई है, जिसके अन्तर्गत ६,००१ से १२००० रु० तक वार्षिक आय वाले व्यक्तियों को या उनकी सहकारी समितियों को गृह निर्माण सम्बन्धी ऋण दिए जाते हैं। जब बीमा निगम ने इस उद्देश्य के लिये १० करोड़ रु० दिए हैं। दिसम्बर सन् १९६० तक ३,५८६ घरों के

निर्माण हेतु ४·८७ करोड़ रु० की सीमा तक ऋण-सहायता स्वीकृत की गई। वास्तविक ऋण २·४३ करोड़ रु० दिया गया। ४७७ मकान बन कर तैयार हुये।

राज्य सरकारों द्वारा अपने कर्मचारियों को पर्याप्त आवास सुविधा प्रदान करने में सहायता करने के लिये एक किराया-गृह-योजना (Rental Housing Scheme) बनाई गई है। इस उद्देश्य के लिए जीवन बीमा निगम ने ७ करोड़ रु० उपलब्ध किये हैं। दिसम्बर सन् १९६० तक २,४६० घरों के लिये २·०८ करोड़ रु० स्वीकृत किया गया और ७३४ मकान बनाये गये।

राष्ट्रीय भवन निर्माण संगठन—जुलाई १९५४ में एक राष्ट्रीय भवन-निर्माण संगठन बनाया गया, जिसका उद्देश्य भवन-निर्माण की लागत को कम करने के उपायों की छान-बीन करना है। वह सस्ती निर्माण सामग्री का विकास करता है तथा अपने अनुसन्धान परिणामों का प्रचार करता है। इसके अन्तर्गत कुछ प्रादेशिक संगठन भी कार्य कर रहे हैं।

तृतीय पंचवर्षीय योजना में आवास व्यवस्था—

निजी क्षेत्र में आवास की व्यवस्था के अतिरिक्त, भारत सरकार की गृह-निर्माण सम्बन्धी योजना निम्न ६ वर्गों से सम्बन्धित है—(i) औद्योगिक कर्मचारियों के लिये आवास की व्यवस्था करना, (ii) निम्न-आय-वर्गीय व्यक्तियों के लिये आवास की व्यवस्था करना (Low-income-group housing), (iii) गन्दी बस्तियों की सफाई करना, (iv) गृह-निर्माण के हेतु भूमि की प्राप्ति करना, (v) ग्रामीण क्षेत्रों में आवास की व्यवस्था करना, और (vi) बागान-श्रमिकों के हेतु आवास की व्यवस्था करना। आवास सम्बन्धी इन सुविधाओं के लिये तृतीय पंच-वर्षीय योजना में १२० करोड़ रुपये पृथक रखा गया है। इसके अतिरिक्त रेल, डाक व तार एवं सुरक्षा विभागों की अलग-अलग गृह-निर्माण सम्बन्धी योजनायें हैं।

यद्यपि गृह समस्या पर अब उचित ध्यान दिया जा रहा है तथापि जो कुछ हो रहा है उससे समस्या कम भले ही हो जाय, किन्तु पूर्णत: नहीं सुलझ सकती। ग्रामीण आवास और मध्यम आय वाले लोगों के लिये आवास के हेतु बहुत कम अर्थ-व्यवस्था की गई है। औद्योगिक गृहों के किराये भी इतने अधिक हैं कि साधारण श्रमिक उनको वहन नहीं कर सकता है, अत: कार्यक्रम में उपयुक्त सुधार करने आवश्यक हैं।

STANDARD QUESTIONS

1. Briefly trace the origin of labour problems in India.
2. Summarise carefully the principal characteristics of Indian Industrial labour.
3. Write a full note on the Migratory character of Indian Industrial labour.
4. Indian Industrial Labour is proverbially inefficient. Comment and suggest measures to improve the efficiency of Indian labourers.

३४.

हमारी कुछ प्रमुख श्रम-समस्यायें (II)
(Labour Problems II)

श्रम कल्याण से आशय, इसका महत्व एवं विभिन्न पक्षों द्वारा अपेक्षित श्रम कल्याण कार्य

'श्रम-कल्याण कार्यों' का अभिप्राय उन समस्त कार्यों से होता है, जो कि कानून द्वारा दी गई वेतन इत्यादि अनेक सुविधाओं के अतिरिक्त श्रम की सुविधा तथा उसके शारीरिक, मानसिक व सामाजिक हित के विकास की दृष्टि से किये जाते हैं। 'श्रमिक-कल्याण कार्य' के क्षेत्र की व्याख्या करते हुए श्रम जाँच समिति ने अपनी रिपोर्ट में लिखा है कि श्रम-कल्याण कार्यों के अन्तर्गत श्रमिक की बौद्धिक शारीरिक, नैतिक एवं आर्थिक विकास के कार्यों का समावेश होना चाहिए। ये कार्य चाहे नियोक्ता, सरकार या अन्य संस्थाओं द्वारा किये जायें तथा साधारण अनुबन्धात्मक सम्बन्ध अथवा विधान के अन्तर्गत श्रमिकों को जो मिलना चाहिए उसके अलावा किये गये हो। इस प्रकार इस परिभाषा के अन्तर्गत हम आवास-व्यवस्था, चिकित्सा एवं शिक्षा सुविधायें, अच्छा भोजन (केन्टीन के आयोजन सहित), आराम एवं मनोरंजन की सुविधायें, सहकारी समितियाँ, चाय घर एवं शिशु-गृह, शौचालय की व्यवस्था, सवेतन छुट्टियाँ, सामाजिक बीमा, प्रॉवीडेण्ट फण्ड, सेवा निवृत्ति वेतन आदि सुविधाओं का समावेश कर सकते हैं।

भारत में श्रम कल्याण कार्य की आवश्यकता

भारतवर्ष में श्रमिकों के हेतु कल्याण-कार्य की बहुत आवश्यकता है। यहाँ का श्रमिक अकुशल है और अन्य देशों की तुलना में उसकी कार्यक्षमता न्यून है। श्रमिकों को सन्तुष्ट और सुखी करने के लिये उनकी परिस्थिति में सुधार करना चाहिए। हमारी दृष्टि से श्रमिकों की केवल नकद मजदूरी बढ़ाने से ही कोई विशेष लाभ न होगा, क्योंकि इससे उनकी कार्य-निपुणता पर कोई गम्भीर प्रभाव नहीं पड़ता। सम्भव है कि नकद राशि को वे जुए और नशे में उड़ा दें। इसके विपरीत

यदि कल्याण-कार्य के द्वारा उनको लाभ पहुँचाया जायगा तो हमें विश्वास है कि उनकी कार्यक्षमता अवश्य बढ़ेगी।

भारत में श्रम कल्याण कार्य की आवश्यकता के सम्बन्ध में निम्नलिखित दलीलें दी जा सकती हैं :—

(१) औद्योगिक शान्ति की स्थापना—इस विषय में दो मत नहीं हो सकते कि कल्याण-कार्य की विस्तृत व्यवस्था से श्रम एवं पूँजी के बीच निकटतम सम्बन्ध स्थापित हो जाते हैं। जब श्रमिक को इस बात का अनुभव होने लगता है कि सेवा-योजक तथा राज्य उनके ही कल्याण के लिये अनेक योजनायें कार्यान्वित कर रहे हैं, तो उनके मन में एक स्वस्थ वातावरण पैदा हो जाता है, जिससे औद्योगिक शान्ति की स्थापना में बड़ा योग मिलता है।

(२) श्रमिक के उत्तरदायित्व में वृद्धि—श्रम-कल्याण कार्य की व्यवस्था से श्रमिक यह अनुभव करने लगते हैं कि वे उद्योग के एक अनुयायी हैं। अत वे संस्था के विकास में विशेष रुचि लेने लगते हैं, उनके उत्तरदायित्व में वृद्धि की भावना से सेवायोजकों को भी बड़ा लाभ होता है।

(३) सेवाओं का आकर्षण बनना—जिस औद्योगिक संस्था में कल्याण कार्य की योजनायें लागू होती हैं, वहाँ की सेवायें अपेक्षाकृत अधिक आकर्षक हो जाती हैं और अधिकाश श्रमिक वहीं कार्य करना पसन्द करते हैं। इससे स्थायी श्रम शक्ति की वृद्धि होती है।

(४) औद्योगिक व्यवस्था का अनिवार्य अंग—आज प्राय. सभी विवेकशील सेवायोजक इस बात का अनुभव करने लगे हैं कि कल्याण-कार्य औद्योगिक व्यवस्था का एक अनिवार्य अंग है। यह श्रमिकों के हृदय में आत्म-गौरव की भावना प्रेरित करता है।

(५) मानसिक क्रान्ति—कल्याण कार्य की व्यवस्था श्रम एवं पूँजी की मानसिक क्रान्ति के द्वारा उनके हृदय-परिवर्तन का एक श्रेष्ठ साधन है।

(६) कार्य क्षमता में वृद्धि—कल्याण-कार्य में श्रमिकों की कार्यक्षमता में निश्चय ही वृद्धि होती है।

(७) सामाजिक गुण—अन्त में यह लिखना अनावश्यक न होगा कि कल्याण-कार्य की व्यवस्था में अनेक सामाजिक कुरीतियों का भी निवारण होना है और इस प्रकार समाज भी लाभान्वित होता है। श्रमिक समाज के महत्वपूर्ण अंग हैं। कैन्टीन में सस्ते व सन्तुलित भोजन की सुविधा से श्रमिकों के स्वास्थ्य में वृद्धि होती है. स्वस्थ मनोरंजन के द्वारा उनकी अनेकों बुरी आदतें (जैसे मदिरापान, जुआ खेलना आदि) दूर हो जाती हैं, चिकित्सा सम्बन्धी सुविधाओं से श्रमिकों तथा उनके आश्रितों के स्वास्थ्य में वृद्धि होती है, इत्यादि।

इन लाभों से ही प्रेरित होकर टैक्सटायल लेबर इन्क्वायरी कमेटी ने कहा था—"कार्यक्षमता का उन्नत स्तर केवल वहीं हो सकता है जहाँ श्रमिक शारीरिक दृष्टि से स्वस्थ तथा मानसिक दृष्टि से सन्तुष्ट हो। इसका तात्पर्य यह है कि केवल वही श्रमिक कुशल हो सकते है जिनके लिये शिक्षा, आवास, भोजन तथा वस्त्रादि का उचित प्रबन्ध हो।" इसी दृष्टि से हमारे देश मे बम्बई विश्वविद्यालय ने श्रम समस्याओं एवं कल्याण कार्य के अध्ययन तथा शिक्षा के लिये विशेष प्रबन्ध किया। श्री टाटा ने भी बॉम्बे स्कूल ऑफ इकॉनॉमिक्स एवं सोशल साइन्सेज की स्थापना इसी उद्देश्य से ही की है।

श्रम कल्याण की दिशा में आधुनिक प्रयत्न

भारतवर्ष में अभी तक जितना भी श्रम-कल्याण किया गया है उसका श्रेय मुख्यतः तीन संस्थाओं को है—(I) केन्द्रीय सरकार, (II) राज्य सरकार, (III) उद्योगपति और (IV) श्रमिक संघ। अब हम इन संस्थाओं द्वारा किये गये कार्य का विशद् विवेचन करेंगे।

(१) केन्द्रीय सरकार द्वारा आयोजित कल्याण कार्य—युद्धोपरान्त (सन् १६३६–४५) केन्द्रीय सरकार ने श्रमिकों की ओर ध्यान दिया। उसके पूर्व सन् १६२२ मे बम्बई मे एक अखिल भारतीय श्रम-हितकारी सम्मेलन के बुलाने के अतिरिक्त कोई महत्वपूर्ण प्रयत्न उसने नहीं किया था, लेकिन अब उसने कुछ ठोस कदम उठाये हैं। सन् १६४२ मे एक श्रम हितकारी सलाहकार और उसकी सहायता के अन्य श्रम-हितकारी नियुक्त किये। सन् १६४४ मे कोयला खानों के श्रमिकों के लिये एक हितकारी कोष खोला, जिसके द्वारा श्रमिकों के मनोरंजन, चिकित्सा और शिक्षा का प्रबन्ध किया गया। सन् १६४६ मे अभ्रक खान श्रमिक हितकारी कोष अधिनियम पास कर दिया गया। साथ ही, सरकार ने अन्य कानूनों का निर्माण किया जिसके आधार पर कारखानो के श्रमिकों के लिये मकानों की व्यवस्था, काम के घण्टे, रोशनदान, मशीनों को ढक कर रखना, चिकित्सा, उपहार-गृह और शिशु-गृहो की व्यवस्था की गई। देखभाल के लिये निरीक्षक रखे गये। ५०० या इससे अधिक श्रमिक वाले कारखानो मे श्रमिक हितकारी अफसर की नियुक्ति अनिवार्य कर दी गई। सरकार अपने कारखानों मे श्रम हितकारी कोष स्थापित करने के साथ-साथ व्यक्तिगत औद्योगिक कारखानो मे कोष स्थापित कराने के प्रयत्न कर रही है। यह कोष श्रमिकों के लिये हितकारी सेवायें जुटाने में व्यय किया जाता है। सन् १६५४ मे स्थायी श्रम समिति ने भी श्रम-हितकारी कोष की स्थापना पर बल दिया। यह कोष केन्द्रीय सरकार द्वारा स्थापित करना चाहिए। इसके अन्तर्गत कारखाने, ट्रामवे तथा मोटर बस सेवायें, आन्तरिक स्टीम जलयान, कोयला व अभ्रक की खानों के अतिरिक्त सब खानें, तेल कूप, उद्यान, जन कार्य, सिंचाई तथा विद्युत सम्मिलित किये गये हैं। वाचनालय, रेलवे कर्मचारियों तथा बन्दरगाहों पर काम करने वाले श्रमिकों के लिये भी विभिन्न प्रकार की हितकारी सुविधायें दी गई हैं।

योजना कमीशन ने भी श्रम-कल्याण कार्यों के महत्व को भली भाँति समझा है, अतः उन्होने पंचवर्षीय योजना मे इन कार्यों के लिये ७ करोड़ रुपया व्यय करने का निश्चय किया था। द्वितीय आयोजन मे केवल श्रमिकों के कल्याणार्थ २९ करोड़ रुपये की व्यवस्था की गई है। प्रथम पंचवर्षीय योजना काल में देश में १३ लाख घर बनाये गये। युद्धोत्तर काल मे श्रमिकों के लिये सहायता प्राप्त औद्योगिक गृह-निर्माण योजना के अन्तर्गत राज्य सरकारों, सरकारी गृह निर्माण समितियों, उद्योगपतियों तथा गृह निर्माण बोर्डों की आर्थिक सहायता देकर गृह बनवाये। प्रथम आयोजन काल मे कुल ३८५ करोड़ रुपया गृह निर्माण पर व्यय किया गया और द्वितीय आयोजन मे १२० करोड़ की व्यवस्था की गई है। उद्यानो तथा अभ्रक व कोयले की खानों मे काम करने वाले श्रमिको के लिए घर बनवाये जा रहे हैं। ये घर श्रम मन्त्रालय के अन्तर्गत बन रहे है। इसी प्रकार अन्य केन्द्रीय तथा राज्य मन्त्रालय अपने-अपने विभागो मे कार्य करने वाले श्रमिको के लिये घर बनवाने की योजनायें चला रहे है। द्वितीय आयोजना काल मे देश मे कुल १९ लाख घर बनवाये जायेंगे।

(II) राज्य सरकार द्वारा किये श्रम-कल्याण कार्य—केन्द्रीय सरकार के अतिरिक्त राज्य सरकारों ने भी श्रमिकों के कल्याण के लिये बहुत कुछ किया है। इस दिशा मे कार्य का श्रीगणेश तो प्रथम-विश्व युद्ध के बाद ही हो गया था और सन् १९३७ मे भी कांग्रेसी सरकारो ने इन कार्यों के प्रति बडी रुचि दिखाई थी, किन्तु कोई सराहनीय कार्य नही हो सका। हां, युद्धोत्तर काल मे अवश्य प्रान्तीय सरकारो का ध्यान इस ओर गया और स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद तो राज्य सरकारो ने इस दिशा मे बडा प्रशंसनीय कार्य किया है। अब हम भारत के कुछ औद्योगिक राज्यो में होने वाले श्रम-कल्याण कार्यों पर प्रकाश डालेंगे।

बम्बई राज्य—बम्बई राज्य मे श्रम-कल्याण के लिए सबसे पहले सन् १९३९-४० के बजट में १,२०,००० रु० का आयोजन किया गया था, जिसमे कल्याण केन्द्र स्थापित किये गये। सन् १९४९-५० के बजट मे किसी कार्य के लिये १०,९८,०८३ रुपये स्वीकार किये गये। सन् १९५१-५२ मे इस राज्य मे ५४ कल्याण-केन्द्र थे—५ 'क' श्रेणी के, ११ 'ख' श्रेणी के, ३६ ग' श्रेणी के और २ 'घ' श्रेणी के। ये चार श्रेणियाँ सुविधाओ के आधार पर बनाई गई हैं। 'क' श्रेणी के कल्याण केन्द्रो म निम्न सुविधायें प्रदान की जाती है—पुरुषो के लिये मैदानी तथा भीतरी खेल स्त्रियो की सिलाई तथा कढाई, बच्चो के लिये नर्सरी स्कूल, स्त्री-पुरुषो के लिए अलग-अलग स्नानागार, औषधालय, पुस्तकालय, वाचनालय तथा माह मे एक बार फिल्म दिखाने का प्रबन्ध। अन्य श्रेणी के केन्द्रो मे सुविधायें कम होती हैं। बम्बई नगर से १८ केन्द्र हैं, शोलापुर और अहमदाबाद मे ६-६ केन्द्र है। सन् १९५३-५४ मे बम्बई राज्य ने श्रम-कल्याण कोष अधिनियम पास कर दिया। श्रम-कल्याण के कार्य संचालन के लिए १४ सदस्यों की एक सभा बनाई गई। सन् १९५७ के बजट मे ३८·७८

लाख रुपये का अनुदान देना स्वीकार किया गया, जिसमें से २७·६७ लाख रुपए औद्योगिक प्रशिक्षण के लिए दिये गये। एक सराहनीय कार्य बम्बई राज्य ने यह किया है कि श्रमिकों में से ही नेताओं का निर्माण किया जाये और इसके लिये उन्हें बम्बई, अहमदाबाद तथा शोलापुर में शिक्षा दी जाती है। इस वर्ष में राज्य बीमा योजना के अन्तर्गत ५,७,४१७ श्रमिकों को सामाजिक सुरक्षा तथा स्वास्थ्य बीमा इत्यादि की सुविधा प्रदान की गई। श्रम-कल्याण कार्यों द्वारा इस प्रदेश के श्रमिकों को काफी लाभ पहुँचा है और उनकी क्षमता में यथेष्ट वृद्धि हुई है।

उत्तर प्रदेश—इस प्रदेश में सन् १६३७ में प्रथम बार कांग्रेस मन्त्रिमण्डल की स्थापना हुई तथा कानपुर में ४ कल्याण केन्द्र स्थापित किये गये। १६४७ के बाद इस दिशा में सराहनीय प्रगति हुई है। सन् १६५४ में इस राज्य में श्रम-कल्याण केन्द्रों की संख्या ४४ थी। सुविधाओं के विचार से उनकी ३ श्रेणियाँ की गई हैं—अ, ब और स। प्रथम श्रेणी के केन्द्रों में एक एलोपैथी का चिकित्सालय, पुस्तकालय व वाचनालय, स्त्रियों के लिए सिलाई व कढ़ाई की कक्षायें, भीतरी और बाहरी खेल संगीत, रेडियो, प्रसूति-गृह इत्यादि की व्यवस्था होती है। द्वितीय श्रेणी के केन्द्रों में भी लगभग यही सुविधायें होती हैं। यहाँ होम्योपैथी का चिकित्सालय होता है। तृतीय श्रेणी के केन्द्रों में पुस्तकालय व वाचनालय, खेलकूद तथा रेडियो इत्यादि होते हैं। श्रम-हितकारी केन्द्रों पर मुफ्त में सिनेमा भी दिखाये जाते हैं। कभी-कभी श्रमिकों का कार्यक्रम अखिल भारतीय रेडियो लखनऊ व इलाहाबाद पर भी होता है। दुर्नामेंट व दंगल आयोजित किये जाते हैं, जिनमें विजेता श्रमिकों को पुरस्कार व प्रमाण-पत्र देकर प्रोत्साहित किया जाता है। चर्खा कक्षायें, प्रौढ़ शिक्षा कक्षायें तथा स्त्रियों के लिये व्यावसायिक शिक्षा की कक्षायें भी इन केन्द्रों द्वारा चलाई जाती हैं।

सन् १६५४ में कानपुर में श्रमिकों के हितार्थ एक टी० बी० का अस्पताल खोला गया है। इसके अतिरिक्त चिकित्सकों के एक संचय-दल का भी निर्माण किया गया है। जुलाई सन् १६५४ में केन्द्रीय सामाजिक-हितकारी बोर्ड के आधार पर U. P. Social Welfare State Advisory Board की भी स्थापना कर दी गई है। यही नहीं, श्रमिकों के लिये हजारों घरों का भी निर्माण किया गया है। गृह-निर्माण कार्य को उत्तर-प्रदेश में तीन श्रेणियों में विभक्त किया गया है। प्रथम श्रेणी के श्रमिकों के लिए कानपुर तथा लखनऊ में क्रमशः २,२१६ व ५६० घर सन् १६५५-५६ में बने, जो श्रमिकों को दिये भी गये हैं। द्वितीय श्रेणी में कानपुर में ३,७५० गृहों का निर्माण किया गया है। तृतीय श्रेणी में कानपुर, आगरा, फीरोजाबाद, इलाहाबाद, मिर्जापुर, सहारनपुर तथा बनारस में ७,४०० मकान बनाने की योजना है, जिनमें से पाँच हजार घरों का निर्माण हो चुका है। श्रमिक-राज्य-बीमा योजना, जो सन् १६५० में कानपुर में लागू की गई थी, अब उस नगर के लाखों श्रमिकों को लाभ पहुँचा रही है। सन् १६५५-५६ में आगरा, लखनऊ तथा सहारनपुर में २०

हजार श्रमिकों को भी इसके अन्तर्गत ले लिया है। स्त्रियों की देखभाल के लिये एक महिला अधिकारी (Women Labour Welfare Superintendent) की नियुक्ति की गई है। उत्तर-प्रदेश की द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत २५३·१ करोड रुपये की निर्धारित धन राशि में से श्रम-कल्याण पर १४२·५ करोड़ रुपये व्यय किये जायेंगे।

पश्चिमी बंगाल—सन् १९४० मे बंगाल राज्य मे १० श्रम कल्याण केन्द्र खोले गये, जिनकी संख्या बढ़ते-बढ़ते सन् १९४५ में ४१ हो गई। विभाजन के बाद इनकी संख्या ३० रह गई। इन केन्द्रों पर भी चिकित्सा, मनोरंजन, खेल-कूद, शिक्षा और सिलाई आदि की सुविधायें उपलब्ध हैं। लगभग ४५ हजार व्यक्ति प्रतिदिन इन केन्द्रों पर जाते है तथा लगभग १६,९४४ बच्चे और ६,४४८ प्रौढ़ प्रात: तथा सन्ध्या-कालीन कक्षाओं मे शिक्षा पाते है। कलकत्ता, हावडा तथा सीरामपुर मे श्रमिकों के लिये क्वार्टर बनवाये जा रहे है। राज्य मे इस समय १५ चिकित्सालय श्रमिकों के लिये कार्य कर रहे है। चाय के बगीचो मे काम करने वाले श्रमिकों के लिये केन्द्रीय चाय बोर्ड ने सन् १९५५-५६ में एक लाख रुपया कल्याण-कार्यों के लिये दिया था। इससे मुख्यत: स्त्रियो तथा बच्चो का कल्याण होगा। सन् १९५७ मे पुखरियाबाग तथा बाग डोगरा मे कल्याण-केन्द्र और खोले गए हैं, जूट मिलो के श्रमिकों की आर्थिक तथा सामाजिक दशा में काफी सुधार हो गया और उनकी कार्यक्षमता मे भी वृद्धि हुई है।

अन्य राज्य—भारत के अन्य राज्यो मे भी श्रम-कल्याण केन्द्र स्थापित किये गये है। पंजाब के नगरो (अमृतसर, लुधियाना, अम्बाला, बटाला, जालन्धर तथा अब्दुल्लापुर) मे इनकी स्थापना हुई है। मध्य-प्रदेश मे हिंगनघाट, जबलपुर, ग्वालियर, उज्जैन, इन्दौर, रतलाम; मद्रास मे नीलगिरि, कोयम्बटूर तथा करियार रोड (उडीसा), राजस्थान मे गंगानगर, जोधपुर और कृष्णगढ़ में भी केन्द्र स्थापित किये गये है।

इसमे कोई सन्देह नही कि श्रम-कल्याण कार्यों की ओर केन्द्रीय व राज्य सर-कारों का ध्यान बढता ही जा रहा है। भारत का प्रत्येक राज्य अपने को 'कल्याण-कारी राज्य' (Welfare State) कहता है, किन्तु समस्या की गुरुता को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि इस दिशा मे अभी बहुत कुछ करना शेष है।

(III) उद्योगपतियों द्वारा कल्याण कार्य—लम्बे अरसे की उदासीनता के बाद उद्योगपतियो ने श्रमिको के प्रति कुछ विशेष जागरूकता दिखलाई है, लेकिन उनके श्रम-कल्याणकारी प्रयत्न अधिकाश मे श्रमिको के हित के प्रति दया-भावना पर आधा-रित हैं। जहाँ तक उद्योगपतियो के दृष्टिकोण का प्रश्न है, वे अब तक कल्याण-कार्य को श्रमजीवियो को फँसाने के लिये एक 'मृग मरीचिका व जाल' के रूप मे उपयोग करते रहते हैं। इन कार्यो को करते हुए वे एक प्रकार से श्रमिकों के ऊपर मानो

अहसान सा करते हैं। यद्यपि अधिकांश में उद्योगपति आज भी बड़े अनुदार हैं और वे *कल्याण-कार्यों मे होने वाले व्यय को आर्थिक लागत नही मानते, किन्तु कुछ उद्योग-*पति उदार व प्रगतिशील भी हैं, जो इस व्यय को विनियोग समझ कर करते हैं, जो *भविष्य मे उनकी बढ़ी हुई उत्पादन क्षमता के रूप मे उन्हे पुनः मिल जाता है। अब* हम ऐसे ही उद्योगपतियो द्वारा किए हुये कल्याण-कार्य की झाकी प्रस्तुत करेंगे।

सूती वस्त्र मिल उद्योग—बम्बई मे सूती मिलो मे चिकित्सालय, जलपानगृह स्थापित किये गये हैं। कुछ मिलो मे आधुनिकतम अस्पताल भी हैं। इनके अतिरिक्त बाहरी-भीतरी खेलो की सुविधा, सहकारी समितियां, बाल एवं प्रौढ़ शिक्षालय, प्रॉवीडेन्ट फण्ड की योजना आदि सुविधाओं की व्यवस्था भी देश के लगभग सभी मिलों मे की गई है। इस दृष्टि से नागपुर का एम्प्रेस मिल, दिल्ली का देहली क्लॉथ एण्ड जनरल मिल्स व बिड़ला कॉटन मिल्स, ग्वालियर का जीवाजी राव कॉटन मिल्स, मद्रास के बंकिघम एण्ड कर्नाटक मिल्स, बंगलौर का बंगलौर वुलियन कॉटन एण्ड सिल्क मिल्स तथा मदुरा मिल्स कम्पनी ने अत्यन्त सराहनीय कार्य किये है।

जूट उद्योग—जूट उद्योग श्रम हितकारी कार्यों को करने वाली एक मात्र संस्था भारतीय जूट मिल संघ है, जिसने हजारीबाग, कनकीनाड़ा, सीरामपुर, टीटागढ और भद्रेश्वर मे श्रम-हितकारी केन्द्रों की स्थापना की है। इन केन्द्रों पर बाहरी-भीतरी खेल-कूदों की व्यवस्था की जाती है। संघ की ओर से पाच प्राथमिक पाठ-शालायें भी चल रही हैं। जूट मिलो ने व्यक्तिगत रूप से भी हितकारी कार्यों मे योग *दिया है। सभी जूट मिलों मे एक चिकित्सालय है। सात मिलों मे प्रसूताओं के लिये* क्लिनिक हैं। ५१ मिलो मे शिशुगृह एवं ४५ जूट मिलो में जलपान-गृह खोले गये है।

ऊनी मिलो मे बड़े कारखानों मे सभी उत्तम व्यवस्थायें उपलब्ध हैं और छोटी मिलों में न्यूनतम कानूनी सुविधाओं का प्रबन्ध है।

इन्जीनियरिंग उद्योग में १,००० या इससे अधिक श्रमिक वाले सभी कारखानों *मे चिकित्सालय है। जहा-जहा स्त्री श्रमिक हैं वहां शिशु-गृह भी बने हैं।* जलपान-गृह तो सभी कारखानो मे मिलेंगे। १०० से ऊपर श्रमिक वाले कारखानो में प्रावीडेन्ट फण्ड योजना लागू है। टाटा आयरन एण्ड स्टील कम्पनी जमशेदपुर विशेष उल्लेखनीय हैं। इसमे ४०० पलंग वाला अस्पताल, प्रसूतागृह एवं ६ प्रसूति क्लिनिक हैं। कम्पनी की ओर से ३ हाईस्कूल, १० मिडिल स्कूल और २५ प्राथमिक स्कूल खोले गये हैं। २ बड़े जलपानगृह हैं। विशाल क्रीडा-स्थल, मुफ्त सिनेमा, सहकारी उपभोक्ता भण्डार व डाकखाने आदि की आदर्श व्यवस्था है। अन्य कारखानो मे भी इसी प्रकार व्यवस्था करने का प्रयत्न किया जा रहा है।

कोयला तथा अभ्रक की खानों मे श्रमिक हितकारी कोष कानून द्वारा बनाये जा चुके हैं, जिनके अन्तर्गत श्रम-हितकारी कार्य हो रहे है। कोलार की सोना खानो मे भी *श्रम-हितकारी कार्य हो रहे है। आसाम तथा पश्चिमी बंगाल के*

अधिकांश बड़े चाय उद्योगों में बड़े-बड़े अस्पताल बने हैं। इनमे अभी जो व्यवस्थायें की गई हैं, वे अत्यन्त अपर्याप्त हैं। इसी प्रकार की न्यूनाधिक व्यवस्थायें अन्य उद्योगों मे भी की गई हैं, परन्तु श्रमिकों की आवश्यकताओं को देखते हुये ये अत्यन्त अपर्याप्त हैं।

(IV) श्रम-संघों द्वारा किये हुये कल्याण कार्य—भारतीय श्रम-संघों की शक्ति अभी तक अधिकांशत: अपने वेतन तथा काम करने की दशाओं के सम्बन्ध में उद्योग-पतियो से संघर्ष करने मे ही लगी रही, अतएव कल्याण-कार्य की दिशा मे रचनात्मक कार्य करने के लिए उन्हे कम सुअवसर मिला। यही नही, दयनीय आर्थिक परिस्थि-तियों के कारण भी वे इस दिशा में कुछ करने मे असमर्थ रहे। जब श्रमिक स्वयं अपना पेट नही भर सकता तो उसके संघ किस प्रकार सम्पन्न हो सकते हैं? कल्याण-कार्य की व्यवस्था के लिये काफी धन की आवश्यकता पड़ती है। फिर भी कुछ श्रम-संघो ने इस दिशा मे अनुकरणीय कार्य किये हैं, जिनमे अहमदाबाद सूती वस्त्र मिल श्रम-संघ, मजदूर-सभा कानपुर एवं मिल मजदूर संघ इन्दौर के नाम उल्लेख-नीय हैं।

अहमदाबाद टेक्सटायल श्रम-संघ—इस संघ की लगभग ७५% आय कल्याण-कार्यों पर ही व्यय होती है। इस संघ के तत्वावधान मे २५ ऐसे केन्द्र स्थापित किये गये हैं जहाँ श्रमिक एकत्रित होकर सांस्कृतिक व सामाजिक कार्यों में भाग लेते हैं। प्रत्येक केन्द्र मे एक पुस्तकालय तथा वाचनालय है। इसके अतिरिक्त यह ७५ सहायता-अनुदान प्राप्त वाचनालयों एवं सचल पुस्तकालयो का भी संचालन करता है। अहमदा-बाद की प्रमुख श्रम बस्तियो मे भी क्रीडास्थल भी संघ की ओर से स्थापित किये गये हैं। इसके अन्तर्गत सदस्यो की चिकित्सा के लिये एक ऐलोपैथिक, होम्योपैथिक तथा एक आयुर्वेदिक औषधालय है। संघ द्वारा संगठित ६ शिक्षा संस्थायें भी नगर मे चल रही है, जिनमे मे ६ स्कूल, २ अध्ययन भवन (Study Ho nes) तथा एक बालिकाओं के लिए छात्रावास है। प्रतिवर्ष श्रमिकों के बच्चो को सहायता देकर उन्हें उच्च अध्ययन के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। संघ द्वारा संगठित चार व्यावसायिक प्रशिक्षणशालाएँ भी हैं। सन् १६५२ में इस संघ ने एक बैंक तथा एक सहकारी उप-भोक्ता भण्डार भी खोला। इस विवरण से स्पष्ट है कि अहमदाबाद श्रम-संघ ने कल्याण-कार्य की दिशा मे सराहनीय कार्य किया है।

कानपुर मजदूर-सभा ने भी मजदूरो के कल्याणार्थ पुस्तकालय, वाचनालय तथा चिकित्सालय की स्थापना की है। इन्दौर मिल मजदूर संघ ने श्रम-कल्याण केन्द्र की स्थापना की है। इस केन्द्र की तीन शाखायें है—बाल मन्दिर, महिला मन्दिर तथा कन्या मन्दिर। बाल मन्दिर मे श्रमिकों के बच्चों को शिक्षा, उनके लिए स्वास्थ्य, खेल-कूद व क्रीडास्थल आदि तथा सांस्कृतिक विकास के लिए संगीत, नृत्य तथा अभिनय इत्यादि की व्यवस्था की जाती है। कन्या मन्दिर मे श्रमिक-बालिकाओं को

प्रारम्भिक शिक्षा, खेल-कूद व स्वास्थ्य, सिलाई-कढ़ाई तथा अन्य गृह-विज्ञान सम्बन्धी बातों के पढ़ाये जाने आदि की व्यवस्था है। महिला मन्दिर में महिलाओं के हेतु प्रौढ़-शिक्षा, व्यावसायिक शिक्षा तथा स्वास्थ्य सुधार इत्यादि की व्यवस्था की गई है।

उपर्युक्त श्रम-संघों के अतिरिक्त देश के रेल कर्मचारी संघ भी अपने सदस्यों के लिए कल्याण-कार्य की व्यवस्था करते हैं—जैसे, क्लब खोलना, सहकारी समितियों की स्थापना करना, मुकदमों की पैरवी करना, इत्यादि। उत्तर-प्रदेश में भारतीय श्रम संघ (Indian Federation of Labour) ने अनेक श्रम कल्याण-केन्द्रों की स्थापना की है। आसाम के चाय के बगीचों में काम करने वाले श्रमिकों के लिये केन्द्रीय सरकार की सहायता से 'अखिल भारतीय राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस' ने कुछ श्रम-कल्याण-कार्यों का आयोजन किया है। अन्त में, हम यह कह सकते हैं कि अब श्रमिक वर्ग काफी जागरूक हो गया है और वह स्वयं संघीय शक्ति से अपने पैरों पर खड़ा होने की चेष्टा कर रहा है, किन्तु अभी तक श्रमिक-संघों ने जो कुछ भी किया है, उसे संतोषजनक एवं पर्याप्त नहीं कहा जा सकता।

संयुक्त राष्ट्र-संघ एवं भारत में श्रम-कल्याण कार्य

संयुक्त राष्ट्र-संघ विश्व के सभी देशों के श्रमिकों के कार्यों में रुचि रखता है। इस संस्था ने भारत तथा अन्य दक्षिणी-पूर्वी एशियाई देशों के श्रमजीवियों के आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक विकास के लिये सराहनीय कार्य किया है। संयुक्त राष्ट्र-संघ ने भारतीय बालकों के कल्याणार्थ मार्च सन् १९५४ तक लगभग ९० लाख डालर व्यय किया। भारत की प्रथम पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत कल्याण-कार्यों का संयुक्त राष्ट्र संघ के मातृ तथा कल्याण-कार्यों से सम्बन्धित एक योजना से समन्वय कर दिया गया था। इस योजना के अन्तर्गत सन् १९५५-५६ में स्वास्थ्य निरीक्षकों तथा दवाइयों के प्रशिक्षण तथा उन्हें चिकित्सा सम्बन्धी पर्याप्त सज्जा से सुसज्जित करने में २० लाख डालर व्यय किए गए।

संयुक्त राष्ट्र संघीय अन्तर्राष्ट्रीय बाल संकट कोष (U. N. I. C. E. F.—United Nations International Childern's Emergency Fund) भारत में माताओं तथा बच्चों को दूध वितरित करने तथा प्रसूतिगृहों एवं बाल कल्याण-केन्द्रों की स्थापना के उद्देश्य से आरम्भ किया गया था। इसमें से १० लाख डालर दूध-वितरण, मलेरिया-नियन्त्रण एवं दुर्भिक्ष निवारण पर व्यय किया जा चुका है। इस धन का अधिकांश भाग भारतीय गावों तथा श्रमिक बस्तियों में व्यय हो रहा है।

इस योजना के अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार विभिन्न राज्य सरकारों को कोष राशि में से उनका भाग देती है। इसमें से पश्चिमी बंगाल को १'२५ लाख डालर, केरल को १'१० लाख डालर, बिहार को २ लाख डालर तथा उत्तर प्रदेश को भी २ लाख डालर दिये जा चुके हैं। ये राज्य सरकारें पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत कल्याणकारी कार्यों की अपनी योजनाओं पर धन का उपयोग माताओं तथा बच्चों

के कल्याण-कार्यों पर कर रही हैं। गांवों के लिये दाइयों को प्रशिक्षित करके उन्हे सज्जा (Kit) प्रदान करना योजना का मूल उद्देश्य है। इस सज्जा में वे सभी वस्तुएं सम्मिलित होगी, जिनकी कि प्रसव के समय आवश्यकता पड सकती है। उक्त संस्था ने ऐसी १४,००० सज्जायें विश्व के २७ राष्ट्रों को देने की योजना बनाई है, जिसमें अकेले भारत को ६,००० सज्जायें मिलेंगी। आशा ही नही, वरन् पूर्ण विश्वास है कि इन प्रयत्नो से भारतीय श्रमिकों को बड़ा लाभ होगा। इस समय श्रमिक-बस्तियों में मातृ-मृत्यु तथा बाल-मृत्यु के ऊंचा होने के कारण अपार मानव संहार हो रहा है, अतएव इस योजना के परिणामस्वरूप संहार न होकर मानवीय कल्याण की वृद्धि होगी।

पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत श्रम-कल्याण

(1) प्रथम पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत श्रम-कल्याण—प्रथम पंचवर्षीय योजना मे श्रम-कल्याण के लिये ९·३१ करोड़ रुपये आयोजित किये गये थे। चाय बागानो के श्रमिको के हितार्थ केन्द्रीय चाय मण्डल (Central Tea Board) को ४ लाख रुपये दिये गये थे। ७६,६७६ क्वार्टर बनवाने की योजना स्वीकार की गई थी, जिनमे से १६,१६५ बम्बई मे, २१,७०९ उत्तर प्रदेश मे, ५,६२६ हैदराबाद मे, ५,१८१ मध्य-प्रदेश मे और ३,४४४ मध्य-भारत व अन्य राज्यो मे बनाये जाने थे। प्रथम योजना के अन्त तक ४०,००७ मकान बन कर तैयार हो चुके है।

मई सन् १९५४ मे सरकार ने १२८ घरो के निर्माण के लिये १,९७,६५० रुपये का अनुदान दिया था। इसमे से १८,६०० रुपए बम्बई राज्य को दिये गए और इसके अतिरिक्त ३७,८०० रुपये ऋण के रूप मे दिये गये थे। जुलाई सन् १९५४ मे आंध्र प्रदेश की चीनी मिल को १,०१,२५० रुपए का अनुदान और १,५८,३४२ रुपये का ऋण दिया गया। इसी योजना के अन्तर्गत अगस्त सन् १९५४ में केन्द्रीय सरकार ने १०,२२९ मकानो के निर्माण के लिए ३,१४,३५,२९७ रुपये की आर्थिक सहायता दी, जिसमे से उत्तर-प्रदेश को लगभग २ करोड रुपये मिले थे। निम्न-तालिका से यह स्पष्ट है कि उत्तर-प्रदेश राज्य मे इस योजना के अन्तर्गत कितने मकानो का निर्माण किया गया :—

नगर	मकानों की संख्या
कानपुर	३,४००
आगरा	१,२९६
फिरोजाबाद	१,०००
सहारनपुर	६०४
इलाहाबाद	५०४
बनारस	५००
मिर्जापुर	९६
योग	७,४००

बम्बई राज्य को श्रमिकों के क्वार्टर बनवाने के हेतु १,०७,४६,००० रुपये दिये गए थे, जिनसे २,३८८ क्वार्टर बनवाये गये हैं।

प्रथम पंच-वर्षीय योजना के अन्तर्गत १५२ कल्याण केन्द्रो की स्थापना की गई।

(II) द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत कल्याण-कार्य—द्वितीय पंच-वर्षीय योजना के अन्तर्गत श्रम कल्याण कार्यों के लिये २९·१६ करोड रु० का आयोजन किया गया था—केन्द्रीय सरकार के लिये १८ करोड रु० व शेष प्रदेशीय सरकारों के लिये। श्रमिकों के क्वार्टरों का निर्माण करने के लिये ५० करोड रु० पृथक से आयोजित थे और चाय बागानो के श्रमिकों के लिये ११,००० मकान बनाने के हेतु २ करोड रु० भी उक्त राशियों से अलग थे। 'खान श्रम कल्याण कोष' (Coal Mines Labour Welfare Fund) से ८ करोड रु० गृह-निर्माण पर व्यय किये जाने थे।

श्रमिकों का जीवन-स्तर ऊँचा करने, एकता और सफाई की ओर उनकी रुचि बढाने के लिये एक नई शिक्षा पद्धति की आवश्यकता है। जुआ खेलने, शराब, ताडी तथा अन्य मादक वस्तुओ की लत छुड़ाने के लिए फिल्मों द्वारा शिक्षा देना अधिक हितकारी होगा। इस हेतु सन् १९६०-६१ तक १०० फिल्म (Audio Visual Films) तैयार होने की आशा है। कारखानों के श्रम-कल्याण विभाग और राजकीय श्रम कल्याण केन्द्र ऐसी फिल्मों के दिखाने का प्रबन्ध करते हैं।

सन् १९५६ में औद्योगिक शिक्षा के लिए १०,३०० व्यक्तियों को सुविधायें प्राप्त थी। द्वितीय योजना अवधि से १९,७०० व्यक्तियों के प्रशिक्षण के लिए अधिक प्रबन्ध किया गया। प्रशिक्षण की अवधि भी बढ़ा दी गई है। काम सीखने की शिष्यत्व योजना (Apprenticeship Scheme) चलाई गई। इसके अन्तर्गत सन् १९६०-६१ तक लगभग ५,००० व्यक्ति भरती किए गए। यह ट्रेनिंग उद्योगों की आवश्यकतानुसार २ से ५ वर्ष तक चलेगी। ट्रेन्ड व्यक्तियो द्वारा कारखानों में कार्य करने पर उत्पादन स्वभावत: बढ़ जावेगा।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत १,३२० श्रम कल्याण केन्द्र खोले गये।

(III) तृतीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत—तृतीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत मैंगनीज एवं लोहा खानो के लिये विशेष कोष स्थापित किये गये हैं। ऐसे ही कोष कोयला व अभ्रक खानों के लिये पहले ही संगठित किये जा चुके हैं। ये श्रमिकों के कल्याण सम्बन्धी कार्य करने के लिये धन की व्यवस्था करते हैं।

उक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि भारत में श्रमिकों की कार्यक्षमता में वृद्धि करने तथा उनके लिये कल्याण कार्यों की व्यवस्था के बहुत कुछ प्रयत्न किये जा रहे

हैं। किन्तु समस्या की गम्भीरता व गुरुता को देखते हुये यह कहा जा सकता है कि इस दिशा मे अभी तक जो कुछ भी किया गया है वह बहुत ही थोड़ा है। सच बात तो यह है कि विभिन्न श्रमिक संनियमों मे दी गई कल्याण सुविधाओ का न्यूनतम भी आज श्रमिको को अधिकाश मे नही मिल पाता। अत: सर्वप्रथम तो पूर्व-स्थित संनियम को ही सच्चे अर्थ मे कार्यान्वित करने की आवश्यकता है। दूसरे, श्रमिकों की समस्या को सुलझाने के लिए यह भी नितान्त आवश्यक है कि एक मानवीय दृष्टिकोण उत्पन्न किया जाय। तभी भारतीय श्रमिक विश्व के अन्य देशो के श्रमिको के समान निपुण व बलिष्ठ होकर देश का आर्थिक उत्थान कर सकेंगे।

STANDARD QUESTIONS

1. Define the scope of 'labour welfare work' and discuss its importance.
2. State briefly how welfare work has developed in India. Describe briefly the welfare activities undertaken by the various agencies in India for the labouring classes.
3. How far has the United Nations Organisation promoted labour welfare in India ?
4. Briefly summarize the welfare work done by the trade union organisations in India.

३५.

भारत में सामाजिक सुरक्षा
(Social Security in India)

भारत में सामाजिक सुरक्षा की आवश्यकता—भारत में सामाजिक सुरक्षा की महिमा के सम्बन्ध में जो कुछ भी कहा जाय, कम ही होगा। भारतीय श्रमिकों की दशा अत्यन्त शोचनीय है। औद्योगीकरण के सभी खतरों का उन्हें सामना करना पड़ रहा है, जैसे—बीमारी, बेकारी आदि। हमारे श्रमजीवियों में संगठन की भी बहुत कमी है, वे अशिक्षित, अज्ञानी एवं दरिद्र हैं। अपने पैरों पर खड़ा होना उन्हें नहीं आता। इस दृष्टि से अन्य उद्योगशील देशों की अपेक्षा भारतीय श्रमिकों की दशा अधिक खराब है, अतएव सामाजिक सुरक्षा का आयोजन अनिवार्य हो जाता है।

भारत में अभी तक क्या हुआ ?—भारत में स्वास्थ्य बीमे की आवश्यकता सर्वप्रथम सन् १९२७ में अनुभव की गई, जबकि लगभग २ वर्ष पूर्व सन् १९२५ में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-कार्यालय में औद्योगिक श्रमिकों की सामाजिक सुरक्षा के सम्बन्ध में प्रस्ताव स्वीकृत किया गया था, किन्तु फिर भी कोई वास्तविक कार्यवाही उस समय नहीं की गई। तत्पश्चात् सन् १९३०-३१ में औद्योगिक श्रमिकों के लिये सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था पर रॉयल कमीशन आफ लेबर ने जोर दिया एवं स्वास्थ्य बीमे पर एक योजना की रूपरेखा भी तैयार की। दुर्भाग्यवश उस समय वह योजना ताक में रख दी गई। सन् १९४० में अनिवार्य चन्दे द्वारा बीमारी आरोप की योजना बनाने का निश्चय किया गया। तृतीय श्रममंत्री सम्मेलन ने इस योजना के सम्बन्ध में यह निश्चय किया कि वस्त्र व्यवसाय तथा इंजीनियरिंग उद्योग के श्रमिकों को बीमारी सम्बन्धी बीमे की सुविधायें दी जायें। इस निर्णय को कार्यान्वित करने के लिए बी० पी० अदारकर की नियुक्ति की गई। प्रोफेसर अदारकर ने अपनी रिपोर्ट सन् १९४४ में प्रस्तुत की, जिसके आधार पर 'कर्मचारी राजकीय बीमा अधिनियम' बनाया गया, जो सामाजिक सुरक्षा प्राप्त करने के लिये ठोस कदम है।

सामाजिक सुरक्षा के लिये वर्तमान समय में निम्नलिखित आयोजन हैं—

(i) श्रमिक क्षति-पूर्ति अधिनियम।

(ii) कोल माइन्स प्रॉवीडेन्ट फण्ड एण्ड बोनस स्कीम एक्ट।
(iii) मातृत्व लाभ अधिनियम।
(iv) प्रॉवीडेन्ट फण्ड एक्ट सन् १६५२।
(v) श्रमिक राज्य बीमा अधिनियम।

(I) श्रमिक क्षति पूर्ति अधिनियम सन् १९२३—यह अधिनियम (संशोधनों सहित) अब जम्मू व काश्मीर राज्य को छोड़कर सारे भारत मे लागू होता है। जिन कर्मचारियों का वेतन ४००) मासिक से अधिक है अथवा जो क्लर्क हैं, उन पर यह अधिनियम लागू नही होता। वास्तव मे रेल, कारखाने, खानें, नाविक व समुद्र पर काम करने वाले कुछ अन्य श्रमिकों, डाक या तार, नहर, चाय, रबड़, कहवा तथा सिनकोना के उद्योगो मे काम करने वाले श्रमिको, विद्युत, स्टेशनों, गोदामो, वेतन पाने वाले, मोटर ड्राइवरों आदि तथा ऐसे सभी कारखाने जहाँ १० या इससे अधिक श्रमिक काम करते है तथा शक्ति का भी प्रयोग होता है एवं ऐसे कारखानो मे जहाँ शक्ति का प्रयोग तो नही होता, किन्तु ५० या अधिक श्रमिक काम करते हैं यह अधिनियम लागू होता है। राज्य सरकारें इसे किसी भी क्षेत्र के श्रमिको पर, यदि वे इनके काम को खतरनाक समझती है, लागू कर सकती है। मद्रास एवं उत्तर-प्रदेश सरकारों ने इसे मशीन से चलने वाली गाड़ियों, माल लादने तथा उतारने वाले श्रमिकों और विद्युत प्रयोग करने वाले सभी कारखानों पर लागू कर दिया है। जो श्रमिक राज्य बीमा अधिनियम या श्रमिको के राज्य बीमा कॉरपोरेशन की ओर से मुआविजा पाने का अधिकारी है, वह इस अधिनियम का लाभ नही उठा सकेगा।

यदि श्रमिको को काम करते समय किसी दुर्घटना से कोई चोट लग जाये तो मालिक द्वारा हर्जाना दिया जायगा। यदि चोट ७ दिन से पहले ठीक होने वाली हो या जिनमे श्रमिक का दोष हो और मृत्यु न होने पावे तो मालिक कोई हर्जाना देने के लिये बाध्य नही। अधिनियम की सूची नं० ३ मे दिया हुआ कोई व्यावसायिक रोग हो जाने पर भी हर्जाना दिलाया जायेगा, हर्जाने की मात्रा चोट की प्रकार एवं श्रमिक की मासिक मजदूरी पर निर्भर होती है।

यह अधिनियम बड़े संतोष की वस्तु है। आवश्यकता इस बात की है कि उसे अधिक से अधिक श्रमिको पर लागू किया जाय और हर्जाने की रकम नियमित रूप से दिलाई जाय। इस अधिनियम के आधार पर श्रमिकों के हर्जाना सनियम कुछ राज्यो मे भी पास किये हैं।

(II) कोयला खान प्रॉवीडेन्ट फण्ड योजनायें—इन योजनाओं के अन्तर्गत श्रमिकों को अपनी बेसिक मजदूरी के ६¼% की दर से चन्दा देना पडता है। इस आशय के लिये बेसिक मजदूरी से महँगाई भत्ता, नकद व वस्तुओं के रूप मे अन्य रियायतें भी सम्मिलित की जाती हैं। सेवायोजकों को भी श्रमिकों के बराबर चन्दा देना पड़ता है। यह योजना आन्ध्र प्रदेश, आसाम, बिहार, महाराष्ट्र, म० प्र०, उड़ीसा राजस्थान

व पं० बंगाल में लागू होती है। फण्ड की कुल राशि अक्टूबर सन् १६६० में २३ करोड़ थी।

(III) मातृत्व लाभ अधिनियम—भारत मे एक बडी संख्या मे स्त्रियाँ मजदूरी करती है। प्रसव-काल से पहले और बाद मे विश्राम एवं पौष्टिक भोजन न मिलने के कारण उनकी बड़ी संख्या मे मृत्यु होती है। बच्चों की मृत्यु संख्या बढ़ने का कारण भी यही है। मातृत्व लाभ की समस्या मानवता एवं सामाजिक पहलू से ही नहीं, आर्थिक पहलू से भी महत्वपूर्ण है। इतने पर भी भारत में अभी तक कोई ऐसा अधिनियम अखिल भारतीय स्तर पर नहीं बनाया गया है जो मातृत्व लाभ की सुविधायें प्रदान करता हो। भारत मे अभी तक जो प्रयत्न हुए है वे व्यक्तिगत राज्यों मे ही हुए। सर्वप्रथम बम्बई में मातृत्व लाभ अधिनियम पास हुआ। इसके बाद रायल श्रम कमीशन के सुझावों पर अन्य प्रान्तो ने भी जैसे, मद्रास (सन् १६३४), उ० प्र० (सन् १६३८), बंगाल (सन् १६३६), पंजाब (सन् १६४३), आसाम (सन् १६४४), बिहार (सन् १६४५) ने भी इन अधिनियमो को बनाया। केन्द्रीय सरकार ने (सन् १६४१) मे काम करने वाली स्त्रियो के लिये मातृत्व लाभ अधिनियम बनाया। अब लगभग सभी राज्यों मे ये अधि नियम बन चुके हैं।

मातृत्व लाभ अधिनियमो के अन्तर्गत स्त्रियो को प्रसव के पहले और बाद मे लाभ दिया जाने लगा है। लाभ की दर और समय की अवधि भिन्न-भिन्न प्रान्तों में अलग-अलग है। उदाहरण के लिये, आसाम मे १५० दिन काम करने पर, बिहार और उत्तर-प्रदेश मे ६ महीने काम करने पर, महाराष्ट्र व गुजरात, बंगाल, पंजाब और मध्य-प्रदेश मे ६ महीने काम करने पर तथा मद्रास मे २४० दिन काम करने पर ही कोई स्त्री लाभ प्राप्त कर सकती है। लाभ की दर भी भिन्न-भिन्न है। आसाम के चाय उद्योगो मे प्रसव के पहले १) प्रति सप्ताह है, तथा बाद मे १।) प्रति सप्ताह है जिनकी कुल धन राशि (१४) से अधिक नहीं होनी चाहिए। बंगाल, मद्रास, महाराष्ट्र व गुजरात, बिहार तथा मध्य-प्रदेश में न्यूनतम ।।) प्रति दिन है। पंजाब मे १२ आना प्रति दिन या अनुपातिक दैनिक आय रखी गई है।

रुपये तथा विश्राम के अलावा बोनस और डाक्टरी सहायता के रूप मे अन्य लाभ भी स्त्री श्रमिकों को दिए जाते हैं। काम करते समय शिशुओं को रखने के लिए शिशु-गृहों की भी व्यवस्था है। उत्तर-प्रदेश का अधिनियम स्त्रियो के गर्भपात होने पर ३ सप्ताह सवैतनिक छुट्टी की आज्ञा देता है।

इन अधिनियमो का पालन कराने के लिए निरीक्षको की नियुक्ति की गई है। मालिको को प्रतिवर्ष इन लाभो की रिपोर्ट सरकार को भेजनी पड़ती है। फिर भी यह कहना पड़ेगा कि इन अधिनियमो मे कुछ दोष हैं। मालिकों पर ही लाभ देने का उत्तरदायित्व होने से यह लोग इनमे अनियमितता करते हैं। लाभ का रूप रुपये मे होने से स्त्रियाँ दूध, औषधि आदि से वंचित रह जाती है। गर्भवती होने का समाचार मिलने पर मालिक स्त्री को अलग कर देते हैं या कुमारियो को ही नौकरी पर रखते

हैं। बहुत सी स्त्रियों के नाम ही रजिस्टर में नही लिखते। इन दोषों को दूर करना स्वतन्त्र भारत की चहुँमुखी उन्नति के लिए बहुत आवश्यक है।

प्रसूति संरक्षण के लिये एक समान स्तर निर्धारित करने के उद्देश्य से लोकसभा में प्रसूति लाभ अधिनियम (Maternity Benefit Bill), १९६० रखा गया था। वह उन सभी कारखानो, खानों व बगानों को लागू होगा जिन्हें कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम लागू नही होता।।

(IV) कर्मचारी प्रॉवीडेन्ट फण्ड—कर्मचारी प्रॉवीडेन्ट बीमा फण्ड अधिनियम, १९५२, जो पहले मूलत ६ प्रमुख उद्योगों को लागू होता था, अब ४१ अन्य उद्योगो को भी लागू होता है, जिनमे बागान (आसाम के चाय बागानो को छोडकर) खानें, अखबार, दियासलाई के कारखाने, सडक मोटर यातायात संस्थान आदि मुख्य है। अधिनियम उन्ही कारखानो व संस्थानो को लागू होता है जो कि अनुसूचित उद्योगो मे कार्य-संलग्न हैं और जिनमें ५० या इससे अधिक कर्मचारी काम करते हैं तथा जो ३ वर्ष से अधिक पुराने हो गये है। जो श्रमिक १ वर्ष से लगातार काम करते रहे है या एक वर्ष मे कम से कम २४० दिन कार्य किया है और जिनकी मासिक मजदूरी (मंहगाई भत्ता व राशन का नकद मूल्य सहित) ५०० रु० प्रति माह से अधिक नही है उनको अनिवार्य रूप से फन्ड मे अपनी बेसिक मजदूरी के ६$\frac{1}{4}$% की दर से चन्दा देना पडता है। सेवायोजक को भी इतनी ही रकम ऐसे श्रमिकों के सम्बन्ध मे देनी पडती है। नवम्बर सन् १९६० तक उक्त नियमन ८,००० संस्थाओ मे लागू हो रहा था। फण्ड म चन्दा देने वाले श्रमिकों की संख्या २८ लाख थी तथा प्रॉवीडेण्ट फण्ड चन्दो की रकम २५०·३५ करोड रु० थी। ६३·६६ करोड़ रु० फण्ड से ऋण के रूप मे या दावो के भुगतान मे दिया गया है। इस प्रकार १८६·६६ करोड़ रु० (ब्याज सहित) शेष रहा। एक विशेष रिजर्व फण्ड भी बनाया गया है, जिसमे से मृत्यु व स्थाई असमर्थता की दशा मे लाभ दिया जायेगा।

उक्त अधिनियम को सन् १९६० मे संशोधित किया गया। इस संशोधन के निम्न उद्देश्य थे—(i) एक्ट को २० या अधिक कर्मचारी रखने वाली छोटी इकाइयो को लागू करना, (ii) १ वर्ष तक संस्थाओ पर एक्ट लागू रखने की अवधि बढ़ाना जबकि न्यूनतम कर्मचारी संख्या १५ तक गिर जाय, (iii) किसी संस्थान की शाखाओ व विभागो को एक ही संस्थान मानना, (iv) श्रमिको के चन्दे की गणना के लिये मौसमी कारखानो मे Rationing Allowances को भी सम्मिलित करना, (v) ५० से कम कर्मचारी रखने वाली सहकारी संस्थानो को मुक्त रखना, और (vi) २० से ५० तक श्रमिक रखने वाले छोटे कारखानो को अधिनियम के दायित्व से ५ वर्ष तक मुक्त करना।

(V) श्रमिकों का राज्य बीमा अधिनियम—यह अधिनियम भारत के सब राज्यों पर लागू होता है। यह सन्नियम ऐसे स्थायी कारखानों के उन श्रमिकों एवं

वलर्कों पर लागू होता है, जिनकी मासिक आय ४००) तक है और जो फैक्टरी एक्ट के अन्तर्गत आते हैं। इससे लगभग २० लाख औद्योगिक श्रमिको को लाभ पहुँच रहा है। इसमे राज्य सरकारों को यह अधिकार है कि वे चाहे तो इसे अपने राज्य मे औद्योगिक, व्यापारिक, कृषि एवं अन्य संस्थाओ पर लागू कर सकती हैं। हा इसके लिए उन्हे पहले *केन्द्रीय सरकार की मान्यता लेना अनिवार्य होगा। इस* अधिनियम के अनुसार ही दिल्ली मे कर्मचारी राजकीय बीमा प्रमण्डल (Employees' State Insurance Corporation) की स्थापना सन् १९४८ मे की गई।

शासन प्रबन्ध—यह प्रमण्डल एक शासकीय प्रमण्डल है, जिसमे केन्द्रीय एवं राज्य सरकार, नियोक्ता और श्रमिको के प्रतिनिधि भी होगे। इसी प्रकार इसमे केन्द्रीय संसद एवं डाक्टर-पेशे के प्रतिनिधि होंगे। प्रमण्डल का शासन-प्रबन्ध एक स्थाई समिति (Standing Committee) के हाथ मे है। इसमे भी मालिकों और श्रमिको के बराबर-बराबर प्रतिनिधि हैं। औषधोपचार सम्बन्धी सुविधाओ के मामले मे सलाह देने के लिये भी एक डाक्टरी परिषद् (Medical Benefit Council) बनाई गई है। बडे अधिकारी वर्ग की नियुक्ति, हिसाब एवं उनकी जाँच आदि का अधिकार केन्द्रीय सरकार को प्राप्त है।

प्रमण्डल की अर्थ-व्यवस्था के हेतु एक 'कर्मचारी राज्य बीमा फण्ड' खोला गया है, जो मालिको और श्रमिको के चन्दे से बनेगा तथा इसमे केन्द्रीय एवं राज्य सरकार भी सहायता के रूप मे कुछ धन राशि देंगी। श्रमिको एवं मालिकों के चन्दे की दरें उनकी आयु के अनुसार निश्चित की गई हैं। इस हेतु श्रमिको को उनकी *आय के अनुसार ८ श्रेणियो मे बाँटा गया है।*

आगोपित व्यक्तियों को सुविधायें

सामाजिक बीमा की इस योजना के अन्तर्गत आगोपित व्यक्तियों को पाँच प्रकार की सुविधायें दी जायेंगी—

(१) **औषधोपचार सम्बन्धी सुविधायें**—इस कार्य के लिए उन स्थानों मे जहाँ भी यह योजना लागू होगी, बीमा प्रमण्डल द्वारा औषधालयो का आयोजन होगा तथा कुछ चलते-फिरते औषधालय रखे जायेंगे, जो आगोपित व्यक्तियो के घर जाकर उनकी स्वास्थ्य सम्बन्धी देख-भाल करेंगे।

(२) **मातृत्व सम्बन्धी लाभ**—ये सुविधायें स्त्री-श्रमिको को प्रसूत सम्बन्धी बीमारी मे दी जायेंगी। ऐसी दशा में स्त्री-श्रमिको को १२ आना प्रतिदिन की दर से अथवा औषधोपचार सम्बन्धी सुविधाओ की दर से (जो भी दर ऊँची हो) १२ सप्ताह तक प्रसूति लाभ मिलता रहेगा तथा गर्भावस्था मे औषधोपचार सुविधायें दी जायेंगी।

(३) **आरोग्यता लाभ**—कारखाने में काम करते समय होने वाली दुर्घटना की वजह से अथवा उस कारखाने से सम्बन्धित किसी रोग का शिकार हो जाने से

यदि कोई श्रमिक काम करने के अयोग्य हो जाता है तो उसे ग्रागोप प्रमण्डल द्वारा श्रमजीवी क्षति-पूर्ति सन्नियम के अनुसार सुविधायें प्रदान की जायेंगी।

(४) श्रमिकों पर आश्रित व्यक्तियों के लिए लाभ—यदि किसी कारखाने के आगोपित व्यक्ति की कारखाने मे होने वाली किसी दुर्घटना से मृत्यु हो जाती है तो ऐसी दशा में उन आश्रितो को (अथवा उनकी विधवा एवं बच्चो को) वार्षिक वृत्ति (Annuity) के रूप में कुछ राशि दी जायगी।

(५) बीमारी सम्बन्धी लाभ—इसके अनुसार जिस श्रमिक का बीमा है उसे डाक्टरी प्रमाण-पत्र के आधार पर समय के अनुसार नकद रुपया मिलता है। प्रथम दो दिन तक कुछ नही मिलता और उसके बाद यदि १५ दिन तक रोग चलता रहे तो आर्थिक सहायता मिलनी प्रारम्भ हो जाती है। ३६५ दिन के निरन्तर काल मे अधिक से अधिक ५६ दिन तक यह लाभ मिल सकता है। इस लाभ की दर श्रमिक के दैनिक वेतन का $\frac{1}{2}$ होगी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि यह अधिनियम बडा विस्तृत है। ३१ दिसम्बर सन् १९५२ को कानपुर तथा दिल्ली मे इस योजना से लाभान्वित होने वाले श्रमिको की संख्या क्रमशः १,०१,४२२ और ५३,४२४ थी। कानपुर की जन-संख्या के आधार पर श्रमिको के लिए २३ डिसपेन्सरियाँ इस प्रकार स्थापित की गईं कि प्रत्येक श्रमिक को कोई न कोई डिसपेन्सिरी पास पड़े। इसके अतिरिक्त कानपुर के निकटवर्ती क्षेत्रों के लिए जो चलते-फिरते अस्पताल भी हैं, जहाँ पर कुशल चिकित्सक कार्य करते हैं। ११ जुलाई सन् १९५४ से नागपुर में भी योजना कार्यान्वित को गई है। इससे नागपुर मे लगभग २५,००० श्रमिक लाभान्वित होंगे। ६ अक्टूबर सन् १९५३ को भारत के प्रधान मन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने श्रमिक राज्य बीमा योजना का उद्घाटन बम्बई मे किया। इससे ४$\frac{1}{2}$ लाख औद्योगिक श्रमिक लाभ उठावेंगे इसी प्रकार मध्य-भारत मे इन्दौर, ग्वालियर तथा रतलाम नगरो मे भी औद्योगिक श्रमिकों के लिये स्वास्थ्य बीमा योजना १४ अक्टूबर से लागू की गई है। उत्तर-प्रदेश मे आगरा, लखनऊ तथा सहारनपुर नगरो मे भी राज्य योजना जनवरी सन् १९५६ मे लागू कर दी गई है। भारत सरकार इस बात के लिए प्रयत्नशील है कि यह योजना शेष भारत पर भी लागू कर दी जाय। वास्तव मे यह योजना एशिया भर मे अपने प्रकार की प्रथम है और देश मे पूर्ण सामाजिक सुरक्षा प्राप्त करने की दिशा मे एक शुभ प्रयत्न है।

कर्मचारी राज्य बीमा योजना की प्रगति—सन् १९५८-५९ से इस योजना के अन्तर्गत कर्मचारियो को मिलने वाली चिकित्सा सुविधायें उनके परिवारो को भी मिलनी शुरू हो गईं। सबसे पहले यह निर्णय मैसूर राज्य ने किया। उसके बाद अन्य राज्यों ने भी उसका अनुकरण किया। सभी राज्यों मे (गुजरात और दिल्ली

के संघ क्षेत्र को छोड़कर) लगभग १५ लाख ७० हजार व्यक्ति इस योजना का लाभ उठा रहे हैं। सन् १९५९-६० के अन्त मे कर्मचारियो का अंशदान ४'०८ करोड़ रु० और मालिको का अशदान ३'१६ करोड़ रु० था। बीमित व्यक्तियो को विभिन्न लाभो के रूप मे २'६८ करोड़ रु० दिया गया—बीमारी लाभ २'२२ करो ़, प्रसूति लाभ १३'५६ लाख रु०, २६'८५ लाख रु० असमर्थता लाभ और २'७८ लाख आश्रित लाभ। बीमित कर्मानियो के ४'८८ लाख परिवारो को आन्ध्र प्रदेश, आसाम बिहार, मध्य-प्रदेश, मैसूर, पंजाब, राजस्थान, उत्तर-प्रदेश और दिल्ली के संघ क्षेत्र से चिकित्सा सम्बन्धी सुविधायें दी जा रही है।

भारत में रोग बीमे की योजना—यहाँ श्री अदारकर की रिपोर्ट पर सन् १९४८ मे श्रमिक राजकीय बीमा अधिनियम पास किया गया था, जिसका उद्देश्य अन्य लाभो के अलावा बीमारी और प्रसूति के लिये भी श्रमिकों को कुछ लाभ प्रदान करना था। यह सभी कारखानो को लागू होता है। यह उन सब लोगों पर लागू होती है जो मजदूरी पर किसी कारखाने मे काम करते हो और जिनकी आमदनी ४००) से अधिक नही है। योजना के प्रशासन के लिये एक कॉरपोरेशन कायम कर दिया गया है। श्रमिक राजकीय बीमा फण्ड मे सेवायोजक व सेवायुक्तो के चन्दों और केन्द्रीय व प्रान्तीय सरकारो, स्थानीय सत्ताओं, व्यक्तियो द्वारा दी गई ग्रांट, दान व भेंट की रकमें शामिल की जाती है। केन्द्रीय सरकार कॉरपोरेशन को प्रथम पाँच वर्षों तक कॉरपोरेशन के प्रशासन व्ययो के दो-तिहाई के बराबर रकम की वार्षिक ग्रांट देगी। अपना और अपने सेवायुक्त के चन्दे की रकम चुकाने का भार अधिनियम ने सेवा-योजको पर डाल दिया है। हाँ, उस अवधि के लिये कोई चन्दा नही लिया जायेगा, जिसमे कि कोई सेवा नही की गई है और न मजदूरी देनी पड़ी है। बीमित व्यक्ति को, आवधिक भुगतान के रूप मे चिकित्सा लाभ पाने का अधिकार होगा, यदि एक उचित रूप से नियुक्त चिकित्सक उसकी बीमारी के लिए प्रमाण-पत्र दे दे। बीमारी के लाभ की दैनिक दर उसकी औसत दैनिक और मजदूरी के आधे के बराबर है। इस लाभ की अधिकतम अवधि ३६५ दिन मे ५६ दिन है। पहले दो दिनो के लिये कोई लाभ नही दिया जाता। हां, उस दशा मे मिल सकता है जबकि श्रमिक १५ दिन के भीतर ही दुबारा बीमार पड़ जाता है।

प्रसूति काल मे एक बीमित स्त्री श्रमिक को १२ आने प्रतिदिन की दर से प्रसूति-लाभ दिया जाता है। प्रसूति लाभ की अवधि १२ हफ्ते है। एक बीमित व्यक्ति को, जिसे रोजगार सम्बन्धी चोट के कारण स्थायी या असमर्थता हो गई है, असमर्थता लाभ पाने के अधिकार है।

एक बीमित व्यक्ति को किसी भी सप्ताह के लिए, जिसमे उसने चन्दे दिये हैं, रोग, प्रसूति या असमर्थता सम्बन्धी लाभ पाने का अधिकार है, चिकित्सा लाभ मे नि:शुल्क चिकित्सा शामिल है, जो कि बीमा डिस्पेन्सरी मे इलाज की सुविधा के रूप

में या बीमा डाक्टर को घर पर जाकर देखने की सुविधा या किसी अस्पताल या अन्य संस्था मे भर्ती होकर इलाज कराने की सुविधा के रूप मे हो सकती है। कॉरपोरेशन चाहे तो चिकित्सा लाभ बीमित व्यक्ति के परिवार को भी विस्तृत कर सकता है।

प्रशासन सम्बन्धी कठिनाइयो को देखते हुए अभी यह बीमा-योजना देश के प्रमुख-प्रमुख औद्योगिक क्षेत्रो मे ही लागू की गई है।

भारत के लिए स्वास्थ्य या बीमे की योजना—इस आशय के लिए एक कॉरपोरेशन बनाया जायेगा, जो कि बीमे के आशय के लिए एक श्रमिक राजकीय बीमा निधि संचय करेगा, जिसमे सेवायोजको व सेवायुक्तो के चन्दे और केन्द्रीय व प्रान्तीय सरकारो, स्थानीय सत्ताओ, व्यक्तियो एवं अन्य संस्थाओ द्वारा दिये गये अनुदान दान भेट शामिल की जायेगी। प्रथम पाँच वर्षों तक केन्द्रीय सरकार प्रशासन व्ययो के दो-तिहाई के बराबर रकम की ग्राँट प्रति वर्ष कॉरपोरेशन को दिया करेगी। सभी कारखानों व संस्थाओ पर यह बीमा योजना लागू होगी। सेवायोजको पर अपने व अपने श्रमिको के चन्दे कॉरपोरेशन मे जमा कराने का भार होगा। हाँ, श्रमिको का चन्दा वे उसकी मजदूरी मे काट सकेंगे। जो श्रमिक १) प्रति दिन से कम मजदूरी पाते हैं। उनको चन्दा नही पडेगा। चन्दा उस अवधि के लिये देय होगा, जिसमे कि मजदूर काम पर लगा हो या छुट्टी पर हो या तालाबन्दी अथवा हडताल के कारण काम मे असमर्थ हो।

बीमित व्यक्ति को बीमारी-लाभ किसी भी लाभ की अवधि मे तभी माँगने का अधिकार होगा जबकि उसी चन्दा अवधि मे, उसके साप्ताहिक चन्दे रोजगार की अवधि के कम से कम दो-तिहाई हफ्तो के लिए देय हो। न्यूनतम १२ चन्दो की सीमा है। बीमारी की अवधि मे बीमारी लाभ निर्धारित दरो के लिये दिये जायेंगे। बीमारी के पहले दो दिनो के लिए कोई लाभ न दिया जायेगा। हाँ, उस दशा मे दिया जा सकता है जबकि १५ दिन के अन्दर वह दुबारा बीमार पड जाये। यह लाभ १ वर्ष मे अधिक से अधिक ५६ दिन तक लिया जा सकता है। एक बीमित व्यक्ति या उसके *परिवार के किसी सदस्य को जिसकी दशा ऐसी है कि चिकित्सा और देख-भाल आव*श्यक है, चिकित्सा-लाभ (Medical benefit) पाने का अधिकार होगा। यह चिकित्सा-लाभ या तो बाहरी मरीज (Out Patient) के रूप मे या डाक्टर द्वारा घर जाकर अथवा अन्दर-मरीज (In Patient) के रूप मे इलाज कराने की सुविधा के रूप मे दिया जायेगा। इसके लिए केन्द्रीय सरकार योग्य डाक्टर, सर्जन, विशेषज्ञ, विशेष अस्पताल आदि की व्यवस्था करेगी। संयोजक किसी सेवायुक्त को लाभ पाने की अवधि मे नौकरी से नहीं निकाल सकेंगे और न सजा दे सकेंगे।

STANDARD QUESTIONS

1. Discuss the need of Social Insurance for workers in India and give the various measures of social insurance existing in India.
2. Describe briefly the constitution and functions of the Indian Employee State Insurance Corporation and examine its actual working and the scope of extending its activities.

अनुभवी वृद्ध व्यक्तियों के उचित पथ-प्रदर्शन का लाभ नही मिल पाता। दूसरे, उनके अभाव मे उत्पादनशीलता भी घटती है।

(इ) हमारी औसत आयु भी अन्य देशो की अपेक्षा बहुत कम है।

(ई) देश मे युवा एवं प्रौढो की जन-संख्या ५३·४% है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि देश के ३६·३७ करोड़ व्यक्तियो मे से केवल १८ करोड़ व्यक्ति ही काम करने वाले हैं, अत: जितने व्यक्ति उत्पादन में संलग्न है उनके अतिरिक्त लगभग 'तने ही व्यक्तियों का पोषण भी उन्ही को करना पडता है।

(३) भारत म जन्म एवं मृत्यु दर दोनों ही अधिक है।

(VI) भाषाओं के आधार पर विभाजन

सन् १९६१ की जन गणना के अनुसार देश मे कुल ८४५ भाषायें अथवा बोलियाँ बोली जाती हैं, जिसमे ७२० भारतीय भाषाये वा बोलियाँ (इनमे से प्रत्येक के भाषियो की संख्या १ लाख से कम है) तथा ६३ गैर भारतीय भाषायें है। ६१ प्रतिशत जनता सविधान मे उल्लिखित १४ भाषाओं मे से किसी न किसी एक भाषा को बोलती हैं। दिल्ली, पंजाब तथा हिमाचल प्रदेश को छोडकर शेष भारत मे हिन्दी बोलने वालो की संख्या १०·८८ करोड थी। हिन्दी, उर्दू, हिन्दुस्तानी तथा पंजाबी बोलने वालो की संख्या १४·९९ करोड़ थी।

(VII) धर्म के आधार पर वितरण (१९५१)

निम्नलिखित तालिका से भारत के विभिन्न धर्मावलम्बियो की संख्या का अनुमान लगाया जा सकता है :—

धर्म	संख्या (लाखों मे)	कुल जन-संख्या का प्रतिशत
१. हिन्दू ...	३०,३२	८४·९९
२. मुस्लिम ...	३,५४	९·९३
३. ईसाई ...	८२	२·३०
४. सिक्ख ...	६२	१·७४
५. जैन ...	१६	०·४५
६. बौद्ध ...	२	०·०६
७. जोरोस्ट्रियन ..	१	०·०३
८. अन्य धर्मावलम्बियाँ (ट्राइबल) ..	१७	०·४७
९. अन्य धर्मावलम्बियाँ (नॉन ट्राइबल)	१	०·०३
योग	३५,६७	१००·००

(VIII) व्यावसायिक आधार पर वितरण

सन् १९५०-५१ में ३५·९३ करोड़ जनसंख्या में से देश में १४·३२ करोड़ व्यक्तियों के रोजगार में संलग्न होने का अनुमान लगाया गया है—१०·३६ करोड़ व्यक्ति कृषि सम्बन्धी कार्यों में, १·५३ करोड़ व्यक्ति खनिज तथा हस्तशिल्प उद्योगों में, १·११ करोड़ व्यक्ति वाणिज्य, बीमा, बैंकिंग, यातायात तथा परिवहन उद्योगों में, ६४ लाख व्यक्ति विभिन्न व्यवसायों में, ३६ लाख व्यक्ति सरकारी नौकरियों में तथा २९ लाख व्यक्ति घरेलू नौकरियों में। अतः स्पष्ट है कि भारत एक कृषि प्रधान देश है, जिसकी लगभग ७०% जन-संख्या कृषि पर अवलम्बित है तथा शेष व्यवसायों में लगी हुई है।

व्यावसायिक आधार पर जन-संख्या के वितरण से इस देश के आर्थिक विकास का अनुमान लगाया जा सकता है। सन् १९५१ की जन-गणना के अनुसार भारत की ३५·९३ करोड़ की जन-संख्या में से देश में १४·३२ करोड़ व्यक्तियों के रोजगार में संलग्न होने का अनुमान लगाया गया है—१०·३६ करोड़ व्यक्ति कृषि सम्बन्धी कार्यों में, १·५३ करोड़ व्यक्ति खनिज तथा हस्तशिल्प उद्योगों में, १·११ करोड़ व्यक्ति वाणिज्य, बीमा तथा बैंकिंग और यातायात तथा संचार साधनों में, ६४ लाख व्यक्ति विभिन्न व्यवसायों में, ३६ लाख व्यक्ति सरकारी नौकरियों में तथा २९ लाख व्यक्ति घरेलू सेवाओं में लगे हैं। प्रत्येक १०० भारतीयों (आश्रित व्यक्ति सहित) में से ४७ भूमिधर किसान, ९ काश्तकार, १३ भूमिहीन मजदूर तथा १ जमींदार था, जबकि उद्योगों या अन्य कृषि जन्य व्यवसायों, वाणिज्य, परिवहन और विविध व्यवसायों में क्रमशः १०, ६, २ और १२ व्यक्ति लगे हुये थे।

व्यावसायिक वितरण का आर्थिक महत्त्व—सन् १९५१ की जनगणना सम्बन्धी आँकड़ों से यह स्पष्ट है कि हमारा देश मुख्यतः कृषि प्रधान देश है, जिसकी लगभग ७०% जन-संख्या कृषि पर अवलम्बित है तथा उद्योग-धन्धों में लगे हुए व्यक्ति १०% से भी कम हैं। आर्थिक विकास की दृष्टि से ऐसी व्यवस्था श्रेष्ठ नहीं कही जा सकती, क्योंकि यदि दुर्भाग्य से किसी वर्ष कृषि की फसल खराब हो जावे तो समस्त देश का आर्थिक जीवन अस्त-व्यस्त हो जाता है। कृषि में संलग्न व्यक्तियों की दशा भी सन्तोषजनक नहीं कही जा सकती। उनमें प्रति १,००० कृषकों पीछे ४०२ ऐसे किसान हैं जिनके पास अपनी भूमि नहीं है। इन्हें जमींदारों भूमि लेनी पड़ती है। जमींदारी उन्मूलन के पहले जमींदारों द्वारा इनका अत्य